



श्रीदुर्गास्त्रिपुष्टशती

(हिन्दी अनुवाद, नित्यपाठोपयोगी विविध-विषय-विभूषित)

अनुवादक :

आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र शास्त्री

सम्पादक :

पण्डित श्रीपुनीत मिश्र

प्रकाशक :

श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली, वाराणसी - २२१००१

☎ : २३९२५४३, २३९२४७१

परिवर्धित संस्करण २००४ ई०

सर्वाधिकार प्रकाशकाधान

मूल्य ४०/-

विषयानुक्रमणिका

विषयः	पृष्ठाङ्काः	विषयः	पृष्ठाङ्काः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
दो शब्द	३	दुर्गा-सप्तशती		तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्	१५८
सप्तश्लोकी-दुर्गा	५	प्रथमोऽध्यायः (१)	४७	नवार्णमन्त्र जपः	१६१
श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रम्	७	द्वितीयोऽध्यायः (२)	६४	प्राधानिकं रहस्यम्	१६१
षोडशोपचार-दुर्गापूजनम्	१०	तृतीयोऽध्यायः (३)	७५	वैकृतिकं रहस्यम्	१६७
दुर्गासप्तशती-पाठ-विधिः	१५	चतुर्थोऽध्यायः (४)	८२	मूर्ति रहस्यम्	१७३
पुस्तक-पूजा	१६	पञ्चमोऽध्यायः (५)	९२	क्षमा-प्रार्थना	१७८
ब्रह्मादि-शाप-विमोचनम्	१६	षष्ठोऽध्यायः (६)	१०४	श्रीदुर्गा-मानस-पूजा	१७९
देव्याः-कवचम्	१८	सप्तमोऽध्यायः (७)	१०८	दुर्गाद्वात्रिंशन्नाम माला	१८२
अर्गला-स्तोत्रम्	२८	अष्टमोऽध्यायः (८)	११३	देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्	१८२
कीलक-स्तोत्रम्	३३	नवमोऽध्यायः (९)	१२२	सिद्ध-कुञ्जिका-स्तोत्रम्	१८४
ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्	३६	दशमोऽध्यायः (१०)	१२९	दुर्गा सप्तशती के कुछ	
तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्	३७	एकादशोऽध्यायः (११)	१३४	सिद्ध सम्पुट मन्त्र	१८७
श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्	३८	द्वादशोऽध्यायः (१२)	१४४	दुर्गा-चालीसा	१९१
नवार्णमन्त्र-जपविधिः	४१	त्रयोदशोऽध्यायः (१३)	१५१	श्रीदेवीजी की आरती	१९४
सप्तशतीन्यासः	४५	उत्तरन्यासः	१५५	श्रीअम्बाजी की आरती	१९६
		ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्	१५७	पूजन-हवन सामग्री	१९८

दो शब्द

जगज्जननी भगवती दुर्गा की साधना एवं पूजन-स्तुति, पाठ करने वाले साधक की पुत्र-पौत्रादि सन्तति इस भूतल पर सुख-पूर्वक तब तक विद्यमान रहती है जब तक पहाड़, वन, कानन (घनघोर जंगल) और कानन से युक्त यह पृथ्वी टिकी हुई है। एवं इस पंचभौतिक शरीर के नष्ट होने पर वह साधक महामाया भगवती दुर्गा की असीम अनुकम्पा से देवदुर्लभ स्थान अर्थात् मोक्षपद को प्राप्त करता है। दुर्गा कवच में कहा भी है—

यावद् भूमण्डलं धत्ते स-शैल-वनकाननम् । तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्र-पौत्रिकी ॥

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् । प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामाया-प्रसादतः ॥

इतना ही नहीं, अपितु, 'यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।' के अनुसार वह साधक जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उसकी प्राप्ति उसे अवश्य होती है, इसमें संशय नहीं। भगवती दुर्गा की पूजा-अर्चा एवं आराधना ने ही इन्द्रादि देवगणों द्वारा महाबलशाली महिष, शुम्भ-निशुम्भ तथा चण्ड-मुण्ड आदि राक्षसों का संहार कराया। भगवती दुर्गा की आराधना का ही सुफल है कि, राजा सुरथ का शत्रुओं द्वारा अपहृत छोना हुआ राज्य, उन्हें पुनः प्राप्त हुआ एवं समाधि नामक वैश्य का मोहजनित अज्ञान दूर हुआ। दुर्गा की आराधना के लिये मार्कण्डेय पुराण से निःसृत सात सौ श्लोकों (मन्त्रों) वाली धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चतुर्विध-फलदात्री प्रस्तुत दुर्गासप्तशती परमोपयोगी ग्रन्थ है। इसमें भगवती दुर्गा का चरित्र-चित्रण प्रथम, मध्यम एवं उत्तम— इन तीन चरित्रों में वर्णित है।

ऐसी महिमामयी दुर्गा-सप्तशती की आराधना एवं पूजा-पाठ प्रत्येक व्यक्ति को करना परमावश्यक है। जब कि, इसके द्वारा ऋषि-महर्षियों ने भी अपनी इष्ट-सिद्धि की है, फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है। यद्यपि दुर्गासप्तशती के अनेकों संस्करण प्रकाशित हुए हैं, परंच आधुनिक शैली में विशुद्ध संशोधन-सम्पादन, पाठक वर्ग के पाठ-सुविधाओं को ध्यान में रखकर, मोटे अक्षरों में, परिमार्जित हिन्दी टीका सहित, साङ्गोपाङ्ग, नित्य पाठोपयोगी विविध विषयों के साथ प्रस्तुत पुस्तक सर्वथा नवीन एवं महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक श्रीरूपेश अग्रवाल (संचालक, श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, कचौड़ीगली, वाराणसी) विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने विशुद्ध मुद्रण, आकर्षक साज-सज्जा से सर्वाङ्ग सुन्दर प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित कर असंख्य दुर्गा-स्नेही भक्तों का बहुत बड़ा उपकार किया है।

—पुनीत मिश्र

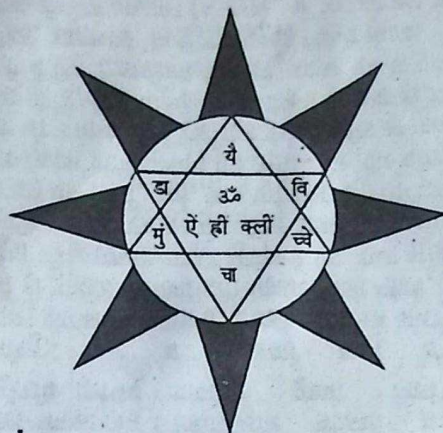
श्रीकृष्णजन्माष्टमी

भाद्रपद कृ. ८, सं. २०६० वै.

सा. १८/१२७ एस.-२, भरत नगर, मौजा हाल

पंचक्रोशी मार्ग, पाण्डेयपुर, वाराणसी

॥ श्रीदुर्गादेव्यै नमः ॥
नवार्णयन्त्रम्



या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ॥
श्रद्धा सतां कुल-जत्र-प्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि! विश्वम् ॥

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि ! त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनि । कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥१॥

देव्युवाच

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् । मया तवैव स्नेहेनाऽप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥२॥

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीदुर्गा-सप्तश्लोकीस्तोत्र-मन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गा-प्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्य-दुःखभय-हारिणी का त्वदन्या सर्वोपकार - करणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥२॥

शिवजी बोले—हे देवि ! तुम भक्तों के लिये सुलभ हो और सभी कार्यों का विधान करने वाली, कलियुग में कामनाओं की सिद्धि के लिये यदि कोई उपाय हो तो उसे अपनी वाणी द्वारा विस्तृत रूप से कहो।

देवी ने कहा— हे देव ! आपका मेरे ऊपर बहुत स्नेह है। कलियुग में समस्त कामनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाला जो साधन है वह बतलाऊँगी, उसका नाम 'अम्बा स्तुति' है।

विनियोग—इस दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्रमन्त्र के नारायण ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीमहाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं, श्रीदुर्गा की प्रसन्नता के लिये सप्तश्लोकी-दुर्गापाठ में विनियोग करें।

वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियों के भी मन को बलपूर्वक खींच कर मोह में डाल देती हैं ॥१॥
माँ दुर्गे ! आप स्मरण करने पर सब प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिन्तन करने

● सर्वमङ्गल-मङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
 ● शरणागत - दीनार्त - परित्राण-परायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि ! नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
 ● सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ! भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
 दुर्गा रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
 स त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वमाश्रितां ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ६ ॥
 प्ल स सर्वाबाधा - प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ! एवमेव त्वया कार्यमस्मद् - वैरिविनाशनम् ॥ ७ ॥
 ती इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ।

पर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय को हरण करने वाली देवी!
 आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सभी का उपकार करने के लिये सदा ही दयार्द्र रहता
 हो॥२॥ नारायणी ! तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मङ्गलमयी, कल्याणदायिनी शिवा
 हो। सब पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो, तुम्हें
 नमस्कार है॥३॥ शरण में आये हुए दीनजन एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी
 पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवी ! तुम्हें नमस्कार है॥४॥ सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की
 शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि ! सब भयों से हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥५॥ हे देवि!
 तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को-नष्ट कर देती हो और कुपित होने पर मनोवाञ्छित सभी कामनाओं
 का नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरण में आ चुके हैं, उन पर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी
 शरण में आये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले हो जाते हैं॥६॥ हे सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार
 तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो॥७॥
 इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ।

श्रीदुर्गाष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने। यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥१॥
 ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी। आर्यादुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥२॥
 पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टामहातपाः। मनो-बुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥३॥
 सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी। अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः ॥४॥
 शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा। सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥५॥
 अपर्णनिकवर्णा च पाटला पाटलावती। पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥६॥

भगवान् शङ्कर ने कहा— हे कमल के समान मुखवाली पार्वती ! मैं भगवती दुर्गा के अष्टोत्तरशत अर्थात् एक सौ आठ नामों का वर्णन करता हूँ उसे तुम सावधानी पूर्वक सुनो। जिस अष्टोत्तरशत दुर्गा-नाम के पाठ मात्र से सतीरूपी दुर्गा अत्यन्त प्रसन्न होती है ॥१॥ १ सती, २ साध्वी, ३ भवप्रीता, ४ भवानी, ५ भवमोचनी, ६ आर्या, ७ दुर्गा, ८ जया, ९ आद्या, १० त्रिनेत्रा, ११ शूलधारिणी, ॥२॥ १२ पिनाकधारिणी, १३ चित्रा, १४ चण्डघण्टा, १५ महातपा, १६ मन, १७ बुद्धि, १८ अहंकार, १९ चित्तरूपा, २० चिता, २१ चिति, ॥३॥ २२ सर्वमन्त्रमयी, २३ सत्ता, २४ सत्यानन्दरूपिणी, २५ अनन्ता, २६ भाविनी, २७ भाव्या, २८ भव्या, २९ अभव्या, ३० सदागति, ॥४॥ ३१ शाम्भवी, ३२ देवमाता, ३३ चिन्ता, ३४ रत्नप्रिया, ३५ सर्वविद्या, ३६ दक्षकन्या, ३७ दक्षयज्ञविनाशिनी, ॥५॥ ३८ अपर्णा, ३९ अनेकवर्णा, ४० पाटला, ४१ पाटलावती, ४२ पट्टाम्बरपरीधाना, ४३ कलमञ्जीररञ्जिनी, ॥६॥

अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी। वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥७॥
 ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा। चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥८॥
 विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा। बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥९॥
 निशुम्भ-शुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी। मधुकैटभहन्त्री च चण्ड-मुण्डविनाशिनी ॥१०॥
 सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी। सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥११॥
 अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी। कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥१२॥
 अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा। महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥१३॥

४४ अमेयविक्रमा, ४५ क्रूरा, ४६ सुन्दरी, ४७ सुरसुन्दरी, ४८ वनदुर्गा, ४९ मातङ्गी, ५०
 मतङ्गमुनिपूजिता ॥७॥ ५१ ब्राह्मी, ५२ माहेश्वरी, ५३ ऐन्द्री, ५४ कौमारी, ५५ वैष्णवी, ५६
 चामुण्डा, ५७ वाराही, ५८ लक्ष्मी, ५९ पुरुषाकृति, ॥८॥ ६० विमला, ६१ उत्कर्षिणी, ६२ ज्ञाना,
 ६३ क्रिया, ६४ नित्या, ६५ बुद्धिदा, ६६ बहुला, ६७ बहुलप्रेमा, ६८ सर्ववाहनवाहना, ॥९॥ ६९
 निशुम्भ-शुम्भहननी, ७० महिषासुरमर्दिनी, ७१ मधुकैटभहन्त्री, ७२ चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी ॥१०॥
 ७३ सर्वासुरविनाशा, ७४ सर्वदानवघातिनी, ७५ सर्वशास्त्रमयी, ७६ सत्या, ७७ सर्वास्त्रधारिणी,
 ॥११॥ ७८ अनेकशस्त्रहस्ता, ७९ अनेकास्त्रधारिणी, ८० कुमारी, ८१ एककन्या, ८२ कैशोरी, ८३
 युवती, ८४ यति, ॥१२॥ ८५ अप्रौढा, ८६ प्रौढा, ८७ वृद्धमाता, ८८ बलप्रदा ८९ महोदरी, ९०
 मुक्तकेशी, ९१ घोररूपा, ९२ महाबला, ॥१३॥

अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी। नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥१४॥
 शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी। कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥१५॥
 य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्। नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥१६॥
 धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च। चतुर्वर्गं तथा चाऽन्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥१७॥
 कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्। पूजयेत्परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥१८॥
 तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि ! सर्वैः सुरवरैरपि। राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥१९॥

१३ अग्निज्वाला, १४ रौद्रमुखी, १५ कालरात्रि, १६ तपस्विनी, १७ नारायणी, १८ भद्रकाली, १९ विष्णुमाया, १०० जलोदरी, ॥१४॥ १०१ शिवदूती, १०२ कराली, १०३ अनन्ता, १०४ परमेश्वरी, १०५ कात्यायनी, १०६ सावित्री, १०७ प्रत्यक्षा तथा १०८ ब्रह्मवादिनी ॥१५॥ हे पार्वती, जो साधक इस एक सौ आठ दुर्गा नाम का पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१६॥ उक्त साधक धन-धान्य, पुत्र, पत्नी, घोड़ा, हाथी एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और अन्त में सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥१७॥ हे देवि ! पहले कुमारी का पूजन तथा सुरेश्वरी भगवती देवी का पूजन कर जो इस अष्टोत्तरशतनाम का पाठ करता है, उसे सभी सिद्धियाँ अवश्य ही प्राप्त होती हैं। उस साधक के लिये राजागण सेवक बन जाते हैं, तथा उक्त साधक राज्यश्री को प्राप्त करता है। इस अष्टोत्तरशतनाम का सभी श्रेष्ठ इन्द्रादि देवगणों ने पाठ कर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त की थीं ॥१८-१९॥

गोरोचना-ऽलक्तक - कुङ्कुमेन सिन्दूर-कपूर-मधुत्रयेण ।
 विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥
 भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रशतभिषां गते। विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम् ॥२१॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

षोडशोपचार-दुर्गापूजनम्

पाठकर्ता सर्वप्रथम दैनिक-क्रिया से निवृत्त होकर कुशासन अथवा ऊर्णासन पर बैठकर 'ॐ केशवाय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ माधवाय नमः', उच्चारण कर तीन आचमन करें। पुनः कुशानि की बनी पवित्री धारणकर प्राणायाम करें तथा निम्न मन्त्र से पूजन सामग्री एवं अपने ऊपर जल से सिञ्चन करें—
 ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
 पश्चात् दाहिने हाथ में जल, अक्षत, द्रव्य, पुष्प लेकर 'ॐ विष्णुर्विष्णुविष्णुः०' उच्चारण पूर्वक मास, पक्ष, तिथि, वारादि के बाद कायिकादि—त्रिविधताप-पापोपशमनार्थम् अखिलब्रह्माण्ड-नायिकायाः सर्वशास्त्रज्ञ भगवान् पुरारि-शंकर भी गोरोचना, अलता, कुंकुम, सिन्दूर, कपूर तथा त्रिमधु (शहद, घी, शक्कर) से इस दुर्गा यन्त्र को लिखकर भुजा में धारण करते हैं॥२०॥ इस यन्त्र को शतभिषा नक्षत्र युक्त चन्द्र तथा मङ्गलवार, भौमवती अमावस्या के दिन रात्रि में लिखकर जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं॥२१॥

इस प्रकार दुर्गाऽष्टोत्तर-शतनामस्तोत्र समाप्त ।

● पराम्बायाः श्रीदुर्गादेव्याः यथालब्धोपचारैः (षोडशोपचारैर्वा) पूजनं करिष्ये' उच्चारण कर जल आदि
 ● को किसी पात्र में छोड़ देवे ।

● पुनः हाथ में जल लेकर, 'तत्राऽऽदौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाऽम्बिकयोः पूजनं करिष्ये' तत्क
 दु पढ़कर जल छोड़ दे तथा गणेश-गौरी का पूजन कर भगवती दुर्गा का पूजन करना चाहिए ।

गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-पूर्वामत्र, सरस्वतीमनुभजे शुष्मादि-दैत्यादिनीम्॥
 ध्यानम्-घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकं, हस्ताऽब्जैर्दधतीं धनान्त-विलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।

विद्युद्दाम-समप्रभां मृगपति-स्कन्ध-स्थितां भीषणां, कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्बस्ताभिरासेविताम्।
 हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं, बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

● आवाहनम्-आगच्छ वरदे देवि ! दैत्यदर्प-निषूदनि। पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये॥
 ● 'आगच्छ वरदे०' श्लोक पढ़कर देवी का आवाहन करे ।

● आसनम्-अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम्। कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम्॥
 इससे भगवती को आसन प्रदान करे ।

● पाद्यम्-गङ्गादिसर्व-तीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम्। तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्॥
 'गङ्गादिसर्व०' पढ़कर पाद्य (जल) देवे ।

● अर्घ्यम्-गन्ध-पुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया। गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा॥
 इससे देवी के लिए अर्घ्य प्रदान करे ।

● आचमनम्-आचम्यतां त्वया देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु। ईप्सितं मे वरं देवि परत्र च परांगतिम्॥
 उक्त मंत्र से भगवती को आचमन (जल) प्रदान करे ।

● स्नानम्-जाह्नवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम्। स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम्॥
 'जाह्नवीतोयमानीत०' से भगवती दुर्गा को स्नान करावे ।

- पञ्चामृतस्नानम्-पयोदधि घृत क्षौद्र सितया च समन्वितम्। पञ्चामृतमर्पेनाद्य कुरु नानं महेश्वरि॥
- 'पयोदधिघृतं०' मन्त्र से पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिये।
- शुद्धोदकस्नानम्-परमानन्दबोधाब्धि-निमग्न-निजमूर्तये। साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि सुरेश्वरि॥
- पुनः शुद्ध जल से भगवती को स्नान करावे।
- वस्त्रम्-वस्त्रं च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम्। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि॥
- इस मन्त्र से देवी को वस्त्र (साड़ी, पीताम्बर इत्यादि) चढ़ावे।
- उपवस्त्रम्-यामाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा। तस्यै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम्॥
- इससे उपवस्त्र (कञ्चुकी, ओढ़नी आदि) प्रदान करे। पश्चात् एक आचमनी जल गिरा दे।
- मधुपर्कः-दधि - मध्वाज्य - संयुक्तं पात्रयुग्म - समन्वितम्। मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदा भव शोभने॥
- किसी पात्र में दधि, मधु, शक्कर मिलाकर देवी को मधुपर्क प्रदान कर, एक आचमनी जल गिरा दे।
- गन्धम्-परमानन्द - सौभाग्य - परिपूर्ण - दिगन्तरे। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि॥
- इससे देवी को सुगन्धि-मिश्रित लाल चन्दन प्रदान करे।
- कुङ्कुमम्-कुङ्कुमं कामना दिव्यं कामिनाकामसम्भवम्। कुङ्कुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि॥
- 'कुङ्कुमं कान्तिदं०' श्लोक पढ़कर देवी को कुङ्कुम (रोली) चढ़ावे।
- आभूषणम्-हार-कङ्कण-केयूर - मेखला-कुण्डलादिनि। रत्नाढ्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥
- इस मन्त्र को पढ़कर आभूषण चढ़ा दें। आभूषण में अक्षत चढ़ा दे।
- सिन्दूरम्-सिन्दूरमरुणाभासं जपा-कुसुम-सन्निभम्। पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि॥
- इससे भगवती को सिन्दूर चढ़ावे।
- कज्जलम्-चक्षुर्क्ष्या कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारके। कूर्परज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि॥
- इससे देवी को काजल लगावे।

- सौभाग्यद्रव्यम्-सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुते। कण्ठे बध्नामि देवेशि सौभाग्यं देहि मे सदा।।
 • यह मंत्र पढ़कर भगवती को सौभाग्य द्रव्य चढ़ावे।
 • सुगन्धितैलम्-चन्दनागरु - कर्पूर - कुंकुमं रोचनं तथा। कस्तूर्यादि-सुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम्।।
 • 'चन्दनागरु०' मन्त्र से देवी को सुगन्धित तेल (इत्र आदि) चढ़ावे।
 • परिमलद्रव्यम्-हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि। तस्मात् त्वां पूजयाम्यत्र सुखशान्तिं प्रयच्छ मे।।
 • 'हरिद्रारञ्जिते०' से देवी को सुगन्धित द्रव्य चढ़ावे।
 • अक्षताः-रञ्जिताः कुङ्कुमौघेन अक्षताश्चाऽतिशोभनाः। ममेकं देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने।।
 • 'रञ्जिताः कुङ्कुमौघेन०' इससे देवी को अक्षत चढ़ावे।
 • पुष्पम्-मन्दार-पारिजातादि पाटली-केतकानि च। जाती-चम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने।।
 • 'मन्दार-पारिजातादि०' मन्त्र से देवी को पुष्प चढ़ावे।
 • पुष्पमाला-सुरभि-पुष्पनिचयैः ग्रथिता शुभमालिका। ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि।।
 • इस मन्त्र से देवी को सुगन्धित माला पहिरावे।
 • विल्वपत्रम्-अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवि प्रियः सदा। विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि।।
 • 'अमृतोद्भव०' मन्त्र से देवी को विल्वपत्र प्रदान करे।
 • धूपम्-दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं चन्दनागरुसंयुतम्। समर्पितं मया भक्त्या महादेवि प्रगृह्यताम्।।
 • 'दशाङ्गं गुग्गुलं०' मन्त्र से धूप दिखावे।
 • दीपम्-घृतवर्ति-समायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम्। दीपं दास्यामि देवशि सुप्रीता भव सर्वदा।।
 • 'घृतवर्ति०' मन्त्र से देवी को दीप प्रदान करे।
 • नैवेद्यम्-अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्ति मे ह्यचलां कुरु।।
 • 'अन्नं चतुर्विधं,' मन्त्र से देवी को ऋतुफल चढ़ावे।

● आचमनम्-कामारिवल्लभे

● 'कामारिवल्लभे०' मन्त्र से देवी को आचमनीय जल प्रदान करे ।

● अखण्ड-ऋतुफलम्-नारिकेलं च नारङ्गं कलिङ्गं मञ्जिरं तथा। उर्वारुकं च देवेशि फलान्येतानि गृह्यताम् ।

● 'नारिकेलं च०' मन्त्र से देवी को नारियल चढ़ावे ।

● ताम्बूल-पूगीफलानि-एला-लवङ्ग-कस्तूरी-कपूरैः पुष्पवासितम्। वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि ।

● 'एला-लवङ्ग०' मन्त्र से पान-सुपाड़ी प्रदान करे ।

● दक्षिणा-पूजाफलसमृद्धयर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि। स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।

● 'पूजाफल-समृद्धयर्थ०' से देवी को दक्षिणा द्रव्य चढ़ावे ।

● प्रार्थना-सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिस्वरूपिणि। पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ।

● 'सर्वस्वरूपे०' मन्त्र से देवी की प्रार्थना करे ।

● आरातिकम्-नीराजनं सुमाङ्गल्यं कपूरिण समन्वितम्। चन्द्रार्क-वह्निसदृशं महादेवि नमोऽस्तु ते ।

● 'नीराजनं०' मन्त्र से भगवती दुर्गा की कपूर द्वारा आरती करे ।

● पुष्पाञ्जलिः-दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभाददासि ।

● दारिद्र्य-दुःखभय-हारिणि का त्वदन्या, सर्वोपकार - करणाय सदाद्रिचिन्ता ।

● 'दुर्गे स्मृता०' मन्त्र से भगवती दुर्गा को पुष्पाञ्जलि अर्पण करे ।

● प्रदक्षिणा-नमस्ते देवि देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे। नमस्ते जगतां ध्यात्रि नमस्ते भक्तवत्सले ।

● 'नमस्ते देवि०' मन्त्र द्वारा देवी की प्रदक्षिणा करे ।

● साष्टाङ्गप्रणामः-नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे। साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्तु प्रयत्नेन मया कृतः ।

● 'नमः सर्वहितार्थायै०' मन्त्र पढ़कर भगवती दुर्गा को साष्टाङ्ग प्रणाम करे।

● प्रार्थना-पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मङ्गले। अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते।। ●

● 'पुत्रान्' देहि धनं०' पढ़कर भगवती दुर्गा की प्रार्थना करे। ●

● विसर्जनम्-इमां पूजां मया देवि ! यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय ब्रज स्थानमनुत्तमम्।। ●

● अन्त में 'इमां पूजां मया०' इस मन्त्र से देवी का विसर्जन करे। ●

॥ इस प्रकार षोडशोपचार दुर्गा-पूजन समाप्त ॥

दुर्गासप्तशती-पाठ-विधिः

● तत्राऽऽदौ आचमन-प्राणायामपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात् । हस्ते जला-ऽक्षत-पुष्प-द्रव्याण्यादाय, ●
 ● ॐ विष्णुर्विष्णु विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याऽद्य श्रीब्रह्मणोऽहि ●
 ● द्वितीये परार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे ●
 ● भूलोकं जम्बूदीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे पुण्यप्रदेशे (अविमुक्तवाराणसी-क्षेत्रे, ●
 ● आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टक-विराजिते भागीरथ्याः पश्चिमभागे) विक्रमशके बौद्धावतारे ●
 ● अमुकनाम-संवत्सरे-श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रद-मासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे ●
 ● अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशि-स्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते ●
 ● श्रीसूर्ये अमुकराशि स्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथा-राशिस्थान-स्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगण- ●
 ● विशेषण-विशिष्टायां शुभपुण्य-तिथौ मम आत्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तफल-प्राप्त्यर्थम्॥ ●

● पाठविधि- सर्वप्रथम आचमन-प्राणायाम कर, हाथ में जल, अक्षत, पुष्प एवं द्रव्य लेकर, 'ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः०' ●
 ● से 'रहस्यत्रय पठनं च करिष्ये' तक पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे। ●

अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माऽहम् (अमुकगोत्रस्य सपत्नीकस्य यजमानस्य) आयुरारोग्यैश्वर्याऽभिवृद्ध्यर्थं
 पुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्न-सन्तति-वृद्धि-स्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभ-शत्रुपराजय-सदभीष्ट-सिद्ध्यर्थं श्रीमहाकाली-
 महालक्ष्मी-महासरस्वती-त्रिगुणात्मिका-पराम्बाजगदम्बाप्रीत्यर्थं च 'मार्कण्डेय उवाच' इत्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता
 मनुः' इत्यन्तं सप्तशतीपाठं (अमुकमन्त्रेण प्रतिमन्त्रसम्पुटितं) तत्राऽऽदौ कवचाऽर्गला-कीलकमाद्यन्त-
 योर्नवार्णमन्त्रजपपुरस्सरं क्रमेण रात्रिसूक्त-देवी-सूक्तपठनमन्ते रहस्यत्रयपठनं च करिष्ये ।
 तत्पश्चाद्-नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥'
 इति श्लोकमुच्चार्य, गन्धा-ऽक्षत-पुष्पैः पुस्तकपूजां कुर्यात् ।

ब्रह्मादि-शाप-विमोचनम्

विनियोगः— ॐ अस्य श्रीचण्डिकाया ब्रह्म-वसिष्ठ-विश्वामित्रशाप-विमोचन-मन्त्रस्य वसिष्ठ-
 नारद-संवाद-सामवेदाधिपति-ब्रह्माण-ऋषयः सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गादेवता चरित्रत्रयं बीजं ह्रीं
 शक्तिः त्रिगुणात्मस्वरूपचण्डिकाशाप-विमुक्तौ मम सङ्कल्पितकार्य-सिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।
 पाठः— ॐ (ह्रीं) रीं रेतःस्वरूपिण्यै मधुकैटभमर्दिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता

पुस्तक पूजा— उसके बाद 'नमो देव्यै०' श्लोक पढ़ कर गन्ध, अक्षत तथा पुष्प से पुस्तक का पूजन करो। पश्चात्
 देवी-कवच, अर्गला एवं कीलक का पाठ करें ।

विनियोग— तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य चण्डिकाया०' से आरम्भ कर 'जपे
 विनियोगः' पर्यन्त पढ़कर जल छोड़ दे । तदनन्तर 'ॐ (ह्रीं) रीं रेतःस्वरूपिण्यै० ॥१॥' से लेकर
 'दुर्गादेव्यै नमः ॥१८॥' तक पाठ करें ।

- भव॥ १ ॥ ॐ श्रीं बुद्धि-स्वरूपिण्यै महिषासुरसैन्यनाशिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता ●
- भव॥ २ ॥ ॐ रं रक्तस्वरूपिण्यै महिषासुर-मर्दिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ३ ॥ ●
- ॐ क्षुं क्षुधास्व-रूपिण्यै देववन्दितायै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ ४ ॥ ॐ ● शा
- दुर्गा छायास्वरूपिण्यै दूत-संवादिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ५ ॥ ॐ शं प
- स शक्तिस्वरूपिण्यै धूम्रलोचन-घातिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ ६ ॥ ॐ तं वि
- प्ततृषास्वरूपिण्यै चण्ड-मुण्ड-वधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ७ ॥ मो
- स ॐ क्षां क्षान्तिस्वरूपिण्यै रक्तबीज-वधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ ८ ॥ च
- ती ॐ जां जातिस्वरूपिण्यै निशुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ ९ ॥ ॐ न
- लं लज्जा-स्वरूपिण्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्म वसिष्ठविश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ १० ॥ ●
- ॐ शां शान्तिस्वरूपिण्यै देवस्तुत्यै ब्रह्म-वसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ११ ॥ ॐ श्रं ●
- श्रद्धास्वरूपिण्यै सकलफलदात्र्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्र शापाद् विमुक्ता भव॥ १२ ॥ ॐ कां ●
- कान्तिस्वरूपिण्यै राजवरप्रदायै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ १३ ॥ ॐ मां ●
- मातृस्वरूपिण्यै अनर्गलमहिम सहितायै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १४ ॥ ●
- ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सं सर्वैश्वर्यकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव॥ १५ ॥ ●
- ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्यकवचस्वरूपिण्यै ब्रह्मवसिष्ठ-विश्वामित्र- शापाद् विमुक्ता ●
- भव॥ १६ ॥ ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेदस्वरूपिण्यै ब्रह्म-वसिष्ठविश्वामित्रशापाद् १७
- विमुक्ता भव॥ १७ ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीस्वरूपिण्यै ●
- त्रिगुणात्मिकायै दुर्गादेव्यै नमः ॥ १८ ॥ ●

इत्येवं हि महामन्त्रान् पठित्वा परमेश्वर !। चण्डीपाठं दिवा रात्रौ कुर्यादिव न संशयः ॥१९॥
 एवं मन्त्रं न जानाति चण्डीपाठं करोति यः । आत्मानं चैव दातारं क्षीणं कुर्यान्न संशयः ॥२०॥

इति रुद्रयामले ब्रह्मादि-शापविमोचनं समाप्तम् ।

अथ देव्याः कवचम्

विनियोगः-ॐ अस्य श्री चण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्या-
 सोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्ध-देवता-स्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।
 ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद् गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

फलश्रुति-पार्वती ने शंकरजी से कहा-हे परमेश्वर ! इस प्रकार इन महामन्त्रों को पढ़कर दिन
 एवं रात्रि में सप्तशती-पाठ करे ॥१९॥ यदि जो साधक इन महामन्त्रों का पाठ न कर सप्तशती पाठ
 करता है वह निःसन्देह अपना एवं यजमान का नाश करता है ॥२०॥

/ इस प्रकार ब्रह्मादि-शापविमोचन समाप्त ।

विनियोग-दाहिने हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य श्रीचण्डी-कवचस्य०' से 'जपे विनियोगः' तक
 पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे ।

मार्कण्डेयजी ने कहा-हे पितामह ! जो साधन संसार में अत्यन्त गोपनीय है, जिससे मनुष्यमात्र की रक्षा
 होती है, तथा आपने अब तक जिसे किसी से भी प्रकट नहीं किया है, वह साधन मुझे बताइए ॥१॥

ब्रह्मवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारम्। देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥
 प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥
 पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च। सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥४॥
 नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः। उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मनाः ॥५॥

ब्रह्मा जी ने कहा— हे ऋषिश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण करने वाला देवी का कवच (रक्षा म
 के लिए पहने जाने वाले एक विशेष प्रकार के पहनावे को कवच कहते हैं। इसी तरह यह स्तोत्र भी
 है, इसके पाठ से साधक सर्वथा सुरक्षित रहता है।) अत्यन्त गोपनीय है, हे महामुने ! उसे
 सुनिये ॥२॥ हे मुने ! दुर्गा की नव शक्तियाँ हैं—पहली शक्ति का नाम शैलपुत्री (हिमालय-कन्या पार्वती)
 है, दूसरी शक्ति का नाम ब्रह्मचारिणी (परब्रह्म परमात्मा को साक्षात् कराने वाली), तीसरी शक्ति चन्द्रघण्टा
 (चन्द्रमा जिसकी घण्टा में हों) है। चौथी शक्ति कूष्माण्डा (सारा संसार जिसके उदर में निवास करता
 हो) हैं ॥३॥ पाँचवीं शक्ति स्कन्दमाता (कार्तिकेय की जननी) हैं। छठीं शक्ति कात्यायनी (महर्षि
 कात्यायन के अप्रतिभ तेज से उत्पन्न होने वाली) है, सातवीं शक्ति कालरात्रि (समस्त सृष्टि का संहार
 करने वाली) तथा आठवीं शक्ति महागौरी (शिव के महाकाली कहने पर क्रोध से जिन्होंने तपस्या कर
 ब्रह्मदेव से गौर वर्ण का वरदान लेनेवाली) है ॥४॥ नवीं शक्ति सिद्धिदात्री (समस्त जगत् को १. ११
 अणिमा, २. लघिमा, ३. प्राप्ति, ४. प्राकाम्य, ५. महिमा, ६. ईशित्व, ७. वशित्व, ८. कामा-
 वसायिता, इन आठ रूपों से सिद्धि देनेवाली) हैं। ये नव दुर्गा कही गयी हैं। ये शक्तियाँ सर्वज्ञ ब्रह्मदेव

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणौ। विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥६॥
 न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे। नापदं तस्य पश्यामि शोक-दुःख-भयं न हि ॥७॥
 येस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते। ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८॥
 प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना। ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥९॥
 माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना। लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०॥
 श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना। ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरण - भूषिता ॥११॥

(वेद) द्वारा कही गयी हैं ॥५॥ जो मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, युद्ध-भूमि में शत्रुओं से घिर गया हो, तथा अत्यन्त कठिन विपत्ति में फँस गया हो, वह यदि भगवती दुर्गा के शरण का आश्रय ले ले, तो उसका कभी युद्ध या संकट में कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, उसे कोई विपत्ति घेर नहीं सकती और न उसे शोक, दुःख तथा भय की प्राप्ति ही हो सकती है ॥६-७॥ जो लोग भक्तिपूर्वक भगवती का स्मरण करते हैं, उनका अभ्युदय होता रहता है। हे भगवती ! जो लोग तुम्हारा स्मरण करते हैं, निश्चय ही तुम उनकी रक्षा करती हो ॥८॥

प्रथम चामुण्डा (चण्ड-मुण्ड का विनाश करने वाली) देवी प्रेत के वाहन पर निवास करती है, वाराही महिष के आसन पर रहती हैं, ऐन्द्री का वाहन ऐरावत हाथी है, वैष्णवी का वाहन गरुड़ है ॥९॥ माहेश्वरी बैल के वाहन पर तथा कौमारी मोर के आसन पर विराजमान है। श्री विष्णुपत्नी-२० भगवती लक्ष्मी के हाथों में कमल है तथा वे कमल के आसन पर निवास भी करती हैं ॥१०॥ श्वेतवर्ण वाली ईश्वरी वृष (बैल) पर सवार हैं, भगवती ब्रह्माणी (सरस्वती) सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त हैं तथा

इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः । नानाभरण-शोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥१२॥
 दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः । शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥१३॥
 खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च । कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१४॥
 दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च । धारयन्त्यायुधानीतृणं देवानां च हिताय वै ॥१५॥
 नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोर-पराक्रमे । महाबले महोत्साहे महाभय-विनाशिनि ॥१६॥
 त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्धिनि । प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥१७॥

वे हंसासन पर विराजमान रहती हैं ॥११॥ अनेक आभूषण तथा रत्नों से देदीप्यमान उपर्युक्त सभी
 देवियाँ सभी योग-शक्तियों से युक्त हैं ॥१२॥ इनके अतिरिक्त और भी देवियाँ हैं, जो दैत्यों के
 विनाश के लिए तथा भक्त-जनों की रक्षा के लिए क्रोधयुक्त होकर रथ में सवार रहती हैं तथा इनके
 हाथों में शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल, मुसल, खेटक, तोमर, परशु (फरसा), पाश (शत्रुओं को बाँधने
 वाला विशेष प्रकार का अस्त्र), भाला, त्रिशूल तथा उत्तम शार्ङ्गधनुष आदि अस्त्र-शस्त्र विराजमान हैं ।
 देवताओं की रक्षा करना ही एकमात्र उनके अस्त्र-शस्त्र धारण का उद्देश्य है ॥१३-१५॥
 महाभय का विनाश करने वाली, महान् बल, महाघोर पराक्रम तथा महान् उत्साह से सुसम्पन्न
 हे महारौद्रे ! (महारुद्र की शक्ति) तुम्हें नमस्कार है ॥१६॥ हे शत्रुओं का भय बढ़ाने वाली देवि !
 तुम मेरी रक्षा करो । दुर्धर्ष तेज के कारण मैं, तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकता । ऐन्द्री शक्ति पूर्व
 दिशा में मेरी रक्षा करे तथा अग्नि देवता की आग्नेयी शक्ति अग्निकोण में हमारी रक्षा करें ॥१७॥

दक्षिणेऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी। प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥
 उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी। ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९॥
 एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना। जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥२०॥
 अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता। शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
 मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी। त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
 शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्धारवासिनी। कपोलौ कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
 नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका। अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥

वाराही शक्ति दक्षिणदिशा में, खड्गधारिणी नैऋत्य कोण में, वारुणी शक्ति पश्चिम दिशा में तथा
 मृग के ऊपर सवार रहने वाली शक्ति वायव्य कोण में हमारी रक्षा करें ॥१८॥ भगवान् कार्तिकेय
 की शक्ति कौमारी उत्तरदिशा में, शूल धारण करने वाली ईश्वरी शक्ति ईशान कोण में, ब्रह्माणी ऊपर
 तथा वैष्णवी शक्ति नीचे हमारी रक्षा करें ॥१९॥ इसी प्रकार शव के ऊपर विराजमान चामुण्डा
 देवी दसों दिशाओं में हमारी रक्षा करें। आगे जया, पीछे विजया हमारी रक्षा करें ॥२०॥ बायें
 भाग में अजिता, दाहिने भाग में अपराजिता, शिखा में उद्योतिनी तथा सिर में उमा नियमपूर्वक
 हमारी रक्षा करें ॥२१॥ ललाट में मालाधरी, दोनों भ्रू में यशस्विनी, भ्रू के मध्य में त्रिनेत्रा तथा
 नासिका में यमघण्टा हमारी रक्षा करें ॥२२॥

दोनों नेत्रों के बीच में शंखिनी, दोनों कान के मध्य में द्वारवासिनी, कपोल में कालिका, कर्ण के
 मूल भाग में शाङ्करी हमारी रक्षा करें ॥२३॥ नासिका के बीच का भाग सुगन्धा, ओष्ठ में चर्चिका,

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका। घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
 कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला। ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२६॥
 नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी। स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
 हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च। नखाञ्जलेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेत् कुलेश्वरी ॥२८॥
 स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः-शोकविनाशिनी। हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
 नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा। पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
 कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी। जङ्घे महाबला रक्षेत् सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥

अधर (ओठ) में अमृतकला तथा जिह्वा में सरस्वती हमारी रक्षा करें ॥२४॥ कौमारी दाँतो की,
 चण्डिका कण्ठ प्रदेश की, चित्रघण्टा गले की तथा महामाया तालु की रक्षा करें ॥२५॥ कामाक्षी ठोड़ी
 की, सर्वमङ्गला वाणी की, भद्रकाली ग्रीवा की तथा धनुष को धारण करने वाली रीढ़ प्रदेश की रक्षा
 करें ॥२६॥ कण्ठ के बाहर नीलग्रीवा और कण्ठ की नली में नलकूबरी, दोनों कन्धों की खड्गिनी
 तथा वज्र को धारण करने वाली दोनों बाहु की रक्षा करें ॥२७॥ दोनों हाथों में दण्ड को धारण करने
 वाली दण्डिनी तथा अम्बिका अङ्गुलियों में हमारी रक्षा करें। शूलेश्वरी नखों की तथा कुलेश्वरी
 कुक्षिप्रदेश में स्थित होकर हमारी रक्षा करें ॥२८॥ महादेवी दोनों स्तन की, शोक को नाश करने वाली
 शोकविनाशिनी मन की रक्षा करें। ललिता देवी हृदय में तथा त्रिशूलधारिणी उदर-प्रदेश में स्थित
 होकर हमारी रक्षा करें ॥२९॥ नाभि में कामिनी तथा गुह्यभाग में गुह्येश्वरी हमारी रक्षा करें। कामिका
 तथा पूतना लिंग की तथा महिषवाहिनी गुदा में हमारी रक्षा करें ॥३०॥ भगवती कटिप्रदेश में तथा
 विन्ध्यवासिनी घुटनों की रक्षा करें। सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाली महाबला जंघा की रक्षा

दक्षिणेऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी। प्रतीच्यां वारुणीं रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥
 उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी। ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९॥
 एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना। जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥२०॥
 अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता। शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
 मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी। त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
 शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्धारवासिनी। कपोलौ कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
 नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका। अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥

वाराही शक्ति दक्षिणदिशा में, खड्गधारिणी नैऋत्य कोण में, वारुणी शक्ति पश्चिम दिशा में तथा
 मृग के ऊपर सवार रहने वाली शक्ति वायव्य कोण में हमारी रक्षा करें ॥१८॥ भगवान् कार्तिकेय
 की शक्ति कौमारी उत्तरदिशा में, शूल धारण करने वाली ईश्वरी शक्ति ईशान कोण में, ब्रह्माणी ऊपर
 तथा वैष्णवी शक्ति नीचे हमारी रक्षा करें ॥१९॥ इसी प्रकार शव के ऊपर विराजमान चामुण्डा
 देवी दसों दिशाओं में हमारी रक्षा करें। आगे जया, पीछे विजया हमारी रक्षा करें ॥२०॥ बायें
 भाग में अजिता, दाहिने भाग में अपराजिता, शिखा में उद्योतिनी तथा सिर में उमा नियमपूर्वक
 हमारी रक्षा करें ॥२१॥ ललाट में मालाधरी, दोनों भ्रू में यशस्विनी, भ्रू के मध्य में त्रिनेत्रा तथा
 नासिका में यमघण्टा हमारी रक्षा करें ॥२२॥

दोनों नेत्रों के बीच में शंखिनी, दोनों कान के मध्य में द्वारवासिनी, कपोल में कालिका, कर्ण के
 मूल भाग में शाङ्करी हमारी रक्षा करें ॥२३॥ नासिका के बीच का भाग सुगन्धा, ओष्ठ में चर्चिका,

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका। घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
 कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला। ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२६॥
 नीलग्रीवा बहिः कण्ठे नलिकां नलकूबरी। स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
 हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च। नखाञ्जूलेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेत् कुलेश्वरी ॥२८॥
 स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः-शोकविनाशिनी। हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
 नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा। पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
 कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी। जङ्घे महाबला रक्षेत् सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥

अधर (ओठ) में अमृतकला तथा जिह्वा में सरस्वती हमारी रक्षा करें ॥२४॥ कौमारी दाँतो की,
 चण्डिका कण्ठ प्रदेश की, चित्रघण्टा गले की तथा महामाया तालु की रक्षा करें ॥२५॥ कामाक्षी ठोड़ी
 की, सर्वमङ्गला वाणी की, भद्रकाली ग्रीवा की तथा धनुष को धारण करने वाली रीढ़ प्रदेश की रक्षा
 करें ॥२६॥ कण्ठ के बाहर नीलग्रीवा और कण्ठ की नली में नलकूबरी, दोनों कन्धों की खड्गिनी
 तथा वज्र को धारण करने वाली दोनों बाहु की रक्षा करें ॥२७॥ दोनों हाथों में दण्ड को धारण करने
 वाली दण्डिनी तथा अम्बिका अङ्गुलियों में हमारी रक्षा करें। शूलेश्वरी नखों की तथा कुलेश्वरी
 कुक्षिप्रदेश में स्थित होकर हमारी रक्षा करें ॥२८॥ महादेवी दोनों स्तन की, शोक को नाश करने वाली
 शोकविनाशिनी मन की रक्षा करें। ललिता देवी हृदय में तथा त्रिशूलधारिणी उदर-प्रदेश में स्थित
 होकर हमारी रक्षा करें ॥२९॥ नाभि में कामिनी तथा गुह्यभाग में गुह्येश्वरी हमारी रक्षा करें। कामिका
 तथा पूतना लिंग की तथा महिषवाहिनी गुदा में हमारी रक्षा करें ॥३०॥ भगवती कटिप्रदेश में तथा
 विन्ध्यवासिनी घुटनों की रक्षा करें। सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाली महाबला जंघा की रक्षा

● गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी। पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत् पादाधस्तलवासिनी ॥३२॥
 ● नखान् दंष्ट्राकराली चकेशांश्चैवोर्ध्वकिशिनी। रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३॥
 दु रक्त-मज्जा-वसा-मांसान्यस्थि-मेदांसि पार्वती। अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥
 र्गा पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा। ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु ॥३५॥
 स शुकं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा। अहङ्कारं मनो बुद्धिं रक्षन्मे धर्मधारिणी ॥३६॥
 प्त प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्। वज्रहस्ता च मे रक्षेत्राणं कल्याणशोभना ॥३७॥
 स ती रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी। सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेत्रारायणी सदा ॥३८॥
 करें ॥३१॥ नारसिंही दोनों पैर के घुट्टियों की, तैजसी देवी दोनों पैर के पिछले भाग की, श्री देवी पैर
 के अँगुलियों की तथा तलवासिनी पैर के निचले भाग-तलुओं की रक्षा करें ॥३२॥ दंष्ट्राकराली (अपनी
 दाढ़ों के कारण भयंकर दिखाई देने वाली) नखों की, ऊर्ध्वकिशिनी देवी केशों की, कौबेरी (कुबेर की
 शक्ति) रोमावलि के छिद्रों में तथा वागीश्वरी त्वचा (शरीर के ऊपरी भाग का चमड़ा) में हमारी रक्षा
 करें ॥३३॥ पार्वती देवी रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी और मेदे की रक्षा करें। कालरात्रि आँतों की
 तथा मुकुटेश्वरी पित्त की रक्षा करें। पद्मावती (मूलाधार में स्थित) सहस्रदल कमल में, चूडामणि कफ
 में, ज्वालामुखी नखराशि में उत्पन्न तेज की तथा अभेद्या (जिसका किसी शस्त्र से भेदन न हो) सभी
 सन्धियों (जोड़ों) में हमारी रक्षा करें ॥३४-३५॥ ब्रह्माणी शुक की, छत्रेश्वरी छाया की, धर्म को धारण
 करने वाली हमारे अहंकार, मन तथा बुद्धि की रक्षा करें ॥३६॥ वज्रहस्ता (वज्र को धारण करने वाली)
 प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान वायु की, कल्याण से सुशोभित होने वाली कल्याण शोभना
 हमारे प्राणों की रक्षा करें ॥३७॥ रस, रूप, गन्ध, शब्द तथा स्पर्शरूप विषयों का अनुभव करते समय

● आयु रक्षतु वाराही धर्म रक्षतु वैष्णवी। यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥३९॥
 ● गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत् पशून्मे रक्ष चण्डिके। पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्या रक्षतु भैरवी ॥४०॥
 ● पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा। राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१॥
 दु रक्षाहीनं तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु। तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! जयन्ती पापनाशिनी ॥४२॥
 र्ग पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः। कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥४३॥
 स तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः। यं यंचिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥४४॥
 ती

● योगिनी तथा हमारे सत्त्व, रज एवं तमोगुणों की रक्षा नारायणी देवी करें ॥३८॥ वाराही आयु की,
 ● वैष्णवी धर्म की, चक्रिणी (चक्र को धारण करने वाली) यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन तथा विद्या की रक्षा
 ● करें ॥३९॥ हे इन्द्राणी, तुम मेरे कुल की तथा हे चण्डिके, तुम हमारे पशुओं की रक्षा करो, महालक्ष्मी
 ● पुत्रों की तथा भैरवी देवी हमारी स्त्री की रक्षा करें ॥४०॥
 ● सुपथा (प्रशस्त मार्ग पर चलने वाली) हमारे पथ की, क्षेमकरी (कल्याण करने वाली) मार्ग की रक्षा
 ● करें। राजद्वार (राजदरबार) में महालक्ष्मी तथा सब ओर, व्याप्त रहने वाली विजया भयों से हमारी रक्षा
 ● करें ॥४१॥ हे देवि ! इस कवच में जिस स्थान की रक्षा नहीं कही गयी है, उस अरक्षित स्थान में
 ● (तुम्हारी शक्ति) पाप को नाश करने वाली जयन्ती देवी हमारी रक्षा करें ॥४२॥ यदि मनुष्य अपना
 ● कल्याण चाहे तो वह कवच के पाठ के बिना एक पग भी कहीं यात्रा न करे। क्योंकि, कवच का पाठ
 ● करके चलने वाला मनुष्य जिस-जिस स्थान पर जाता है ॥४३॥ उसे वहाँ-वहाँ धन का लाभ और
 ● सम्पूर्ण कामना एवं विजय की प्राप्ति होती है, वह पुरुष जिस-जिस अभीष्ट वस्तु को पाना चाहता है,
 ● वह-वह वस्तु उसे निश्चय ही प्राप्त होती है ॥४४॥

दे
व्या
क
व
च
म

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान्। निर्भया जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ॥४५॥
 त्रैलोक्ये तु भवेत् पूज्यः कवचेनावृतः पुमान्। इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ॥४६॥
 यः पठेत् प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः। दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ॥४७॥
 जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः। नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूता-विस्फोटकादयः ॥४८॥
 स्थावरजङ्गमंचैव कृत्रिमंचाऽपि यद्विषम्। अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्र-यन्त्राणि भूतले ॥४९॥
 भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः। सहजाः कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ॥५०॥

कवच का पाठ करने वाला इस पृथ्वी पर अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है, वह किसी से नहीं डरता और युद्ध में उसे कोई हरा भी नहीं सकता ॥४५॥ और तीनों लोकों में उसकी पूजा होती है। यह देवी का कवच देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥४६॥ जो लोग तीनों सन्ध्याओं में श्रद्धापूर्वक इस कवच का पाठ करते हैं, उन्हें दैवी कला की प्राप्ति होती है, तीनों लोकों में उन्हें कोई जीत नहीं सकता ॥४७॥ उस पुरुष की अपमृत्यु (अकालमृत्यु) नहीं होती। वह सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहता है। इस कवच का पाठ करने से लूता (सिर में होने वाला खाज का रोग, मकरी), विस्फोटक (चेचक) आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ स्थावर विष (कनेर, भाँग, अफीम में रहने वाला), जंगम विष (साँप, बिच्छू आदि से उत्पन्न), कृत्रिम विष (अफीम, तेल आदि के संयोग से उत्पन्न) ये सभी प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं। मारण, मोहन तथा उच्चाटन आदि सभी प्रकार के किये गये अभिचार, मन्त्र तथा यन्त्र, पृथ्वी तथा आकाश में विचरण करने वाले ग्रामदेवतादि, जल में उत्पन्न होने वाले तथा उपदेश से सिद्ध होने वाले क्षुद्र देवता आदि, कवच के पाठ करने वाले मनुष्य को देखते ही विनष्ट हो जाते हैं। जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले ग्राम देवता, कुलक्रम से उत्पन्न होने वाले कुलदेवता, कण्ठमाला, डाकिनी,

● अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः । ग्रह-भूत-पिशाचाश्च यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः ॥५१॥
 ● ब्रह्म-राक्षस-वेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः । नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ॥५२॥
 ● मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् । यशसा वर्धते सोऽपि कीर्ति-मण्डित-भूतले ॥५३॥
 ● जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा । यावद् भूमण्डलं धत्ते स-शैल-वन-काननम् ॥५४॥
 ● तावच्चिच्छति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्र-पौत्रिकी । देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥५५॥
 ● प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः । लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते । ॐ ॥५६॥

इति वाराहपुराणे हरिहर-ब्रह्म-विरचितं देव्याः कवचं समाप्तम् ॥११॥

● शाकिनी, अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली अत्यन्त भयानक बलवान् डाकिनियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच,
 ● यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड तथा भयानक भैरव आदि सभी अनिष्ट करने वाले
 ● जीव विशेष कवच का पाठ करने वाले पुरुष को देखते ही विनष्ट हो जाते हैं ॥४९-५२॥ कवचधारी
 ● पुरुष का राजा के द्वारा सम्मान की प्राप्ति होती है । यह कवच मनुष्य के तेज की वृद्धि करने वाला है ।
 ● कवच का पाठ करने वाला पुरुष इस पृथ्वी को अपनी कीर्ति से सुशोभित करता है और अपनी कीर्ति
 ● के साथ वह नित्य अभ्युदय को प्राप्त करता है ॥५३॥ जो कवच का पाठ कर सप्तशती का पाठ करता
 ● है, उसके पुत्र-पौत्रादि सन्तति पृथ्वी पर तब तक विद्यमान रहती है, जब तक पहाड़, वन, कानन और
 ● कानन से युक्त यह पृथ्वी टिकी हुई है ॥५४॥ कवच का पाठ कर दुर्गा सप्तशती का पाठ करने वाला
 ● मनुष्य मरने के बाद महामाया की कृपा से देवताओं के लिए जो अत्यन्त दुर्लभ स्थान है, उसे प्राप्त
 ● कर लेता है और उत्तम रूप प्राप्त कर शिवजी के साथ आनन्दपूर्वक निवास करता है ॥५५-५६॥

इस प्रकार वाराह-पुराण में हरिहरब्रह्म विरचित देवीकवच समाप्त ।

अर्गलास्तोत्रम्

विनियोगः— ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीदेवताः,
श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।
ॐ नमश्छण्डिकायै ।।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥१॥
जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि । जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥२॥

विशेष—अर्गला ब्योंड़ा को कहते हैं, यह लोहे या काठ का होता है, द्वार पर जिसके लगा देने से किवाड़ नहीं खुलते । इसी तरह इस स्तोत्र के पाठ से होता है अर्थात् किसी प्रकार की बाहरी बाधा घर में प्रवेश नहीं कर पाती ।

विनियोग—हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य श्री०' से 'जपे विनियोगः' तक पढ़कर जल गिरा दे ।

मार्कण्डेयजी ने कहा— जिस जगदम्बिका का नाम जयन्ती (सबकी अपेक्षा अत्यधिक उत्कर्ष वाली), मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी (मुण्डमाला को धारण करने वाली), दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री (सबको धारण करने वाली) स्वाहा (यज्ञों को स्वीकार कर देवताओं का पोषण करने वाली) तथा स्वधा, पितरों के श्राद्ध, तर्पणादि को स्वीकार कर पोषण करने वाली हैं, उस भगवती को हम नमस्कार करते हैं ॥१॥
हे चामुण्डे ! (चण्ड-मुण्ड का विनाश करने वाली) तुम्हारी जय हो । प्राणियों का सन्ताप हरण करने वाली

मधु-कैटभ-विद्रावि विधातृवरदे नमः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥३॥
 महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥४॥
 रक्तबीजवधे देवि चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥५॥
 शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥६॥
 वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥७॥
 अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥८॥

हे देवि ! तुम्हारी जय हो । सब में व्याप्त रहने वाली हे देवि ! तुम्हारी जय हो । संहाररूप से संसार का
 विनाश करने वाली हे कालरात्रि ! तुम्हारी जय हो ॥२॥
 मधु तथा कैटभ का विदारण करने वाली एवं ब्रह्मदेव को वरदान देने वाली हे देवि ! तुम्हारी जय हो ।
 हे भगवती, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥३॥ महिषासुर का
 विनाश कर भक्तों को सुख देने वाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है । तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा
 हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥४॥ रक्तबीज का वध करने वाली तथा चण्ड, मुण्ड का विनाश करने वाली
 हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥५॥ शुम्भ तथा निशुम्भ
 और धूम्राक्ष का मर्दन करने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश
 करो ॥६॥ वन्दनीय चरणों वाली, सम्पूर्ण सौभाग्य को प्रदान करने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय
 दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का विनाश करो ॥७॥ अचिन्त्यरूप तथा अचिन्त्य चरित्र वाली, सम्पूर्ण
 शत्रुओं का विनाश करने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का विनाश

नतोभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥९॥
 स्तुवन्मयो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१०॥
 चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥११॥
 देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१२॥
 विदेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१३॥
 विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१४॥

करो ॥८॥ हे पापों का नाश करने वाली चण्डिके देवि ! जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हें नमस्कार करते हैं, उन्हें
 तुम रूप दो, जय दो, यश दो तथा उनके शत्रुओं का विनाश करो ॥९॥
 व्याधियों का विनाश करने वाली हे चण्डिके देवि ! जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं,
 तुम उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो तथा उनके शत्रुओं का विनाश करो ॥१०॥ हे चण्डिके ! जो लोग
 भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं, तुम उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो तथा उनके शत्रुओं का विनाश
 करो ॥११॥ हे भगवति ! तुम मुझे सौभाग्य तथा आरोग्य दो, मुझे अत्यन्त सुख प्रदान करो और मुझे
 रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥१२॥ हे देवि ! मेरे शत्रुओं का नाश
 करो, मुझे बल दो, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का संहार करो ॥१३॥ हे
 देवि ! मेरा कल्याण करो, मुझे विपुल-सम्पत्ति दो, मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं
 का विनाश करो ॥१४॥

सुरा-ऽसुर-शिरोरत्न-निघृष्ट-चरणेऽम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१५॥
 विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१६॥
 दुर्गा प्रचण्ड-दैत्य-दर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१७॥
 सप्त चतुर्भुजे चतुर्वक्त्र - संस्तुते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥
 स कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१९॥
 ती हिमाचल - सुतानाथ - संस्तुते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२०॥

हे भगवति ! देवताओं तथा असुरों के शिरोरत्न के नमस्कार से तुम्हारे चरण घिसते रहते हैं । अतः हे
 अम्बिके ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥१५॥ हे भगवति ! तुम
 अपने भक्तों को विद्वान्, यशस्वी तथा लक्ष्मीवान् बनाओ । तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे
 शत्रुओं का विनाश करो ॥१६॥ बड़े-बड़े उद्धत दैत्यों के घमण्ड को चूर करने वाली हे चण्डिके ! मुझ
 शरणागत को तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥१७॥ चारभुजा
 वाली, ब्रह्मदेव से स्तुति की जाने वाली, हे परमेश्वरि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं
 का विनाश करो ॥१८॥ हे भगवति ! भगवान् विष्णु नित्य, निरन्तर तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, तुम मुझे
 रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥१९॥ भगवान् सदाशिव से स्तुति की जाने
 वाली हे परमेश्वरि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥२०॥

● इन्द्राणी पतिसद्भाव-पूजिते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२१॥
 ● देवि प्रचण्ड-दोर्दण्ड-दैत्यदर्प-विनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२२॥
 ● देवि भक्तजनोद्दाम-दत्तानन्दोदयेऽम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२३॥
 ● पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् । तारिणीं दुर्गसंसार-सागरस्य कुलोद्भवाम् ॥२४॥
 ● इदं स्तोत्रं पठित्वां तु महास्तोत्रं पठेन्नरः । स तु सप्तशतीसंख्या-वरमाप्नोति सम्पदाम् ॥२५॥
 इति श्रीदेव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२॥

इन्द्र के द्वारा शुद्ध भावना से पूजी जाने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥२१॥ अपने प्रचण्ड भुजाओं से दैत्यों के घमण्ड को चूर-चूर कर देने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥२२॥ अपने भक्तजन का अत्यन्त आनन्द बढ़ाने वाली हे अम्बिके ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥२३॥ हे भगवति ! हमारी इच्छा के अनुकूल चलने वाली सुन्दर पत्नी मुझे प्रदान करो, जो उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो तथा संसाररूपी सागर से पार करने वाली हो ॥२४॥ जो लोग इस अर्गला स्तोत्र का पाठ कर दुर्गासप्तशती का पाठ करते हैं, वे सप्तशती के पाठ का उत्तम फल को प्राप्त करते हैं तथा प्रचुर धनराशि भी भगवती की दया से उन्हें मिलती है ॥२५॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दी व्याख्या सहित दुर्गासप्तशती में देवी का अर्गलास्तोत्र समाप्त ।

कीलकस्तोत्रम्

विनियोगः— ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता,
दुर्गा-सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

विशुद्ध-ज्ञान-देहाय त्रिवेदी-दिव्यचक्षुषे । श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥१॥
सर्वमितद्विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् । सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाय्यतत्परः ॥२॥

विशेष— दुर्गा द्वारा भगवती के अत्यन्त उदीप्त प्रभाव को देखकर महर्षियों ने शाप से उसे कीलित कर दिया, अतः उस विघ्नरूपी कील को निवारण करने के लिए कीलक का पाठ अवश्य करना चाहिए ।

विनियोग-पूर्वोक्त प्रकार से यहाँ पर भी हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य०' से 'जपे विनियोगः' पर्यन्त पढ़कर जल गिरा दे ।

मार्कण्डेयजी ने कहा—जिन भगवान् शङ्कर का विशुद्ध ज्ञान ही शरीर है, तीनों वेद ही जिनके तीन नेत्र हैं, जो द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक में धारण किये हुए हैं तथा समस्त कल्याण के हेतुभूत हैं, मैं उन शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

सप्तशती के पाठ करनेवालों को यह कीलक सप्तशती मन्त्रों का अंग ही जानना चाहिए । अतः जो दुर्गा-सप्तशती के साथ इस कीलक का पाठ करते हैं उनका सदैव कल्याण होता है ॥२॥

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि। एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥३॥
 न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते। विना जाप्येन सिद्ध्येत् सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥४॥
 समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः। कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥५॥
 स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः। समाप्नोति सुपुण्येन तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥
 सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः। कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७॥
 ददाति प्रतिगृह्णाति नाऽन्यथैषा प्रसीदति। इत्थं रूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥८॥

जो लोग कीलक के साथ दुर्गासप्तशती के स्तोत्रों से भगवती की स्तुति करते हैं, उनके उच्चाटन आदि सभी क्रियाएं सिद्ध होती हैं और उन्हें दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है तथा भगवती की सिद्धि भी हो जाती है ॥३॥ कीलकपूर्वक सप्तशती का पाठ करनेवाले पुरुष को किसी मन्त्र अथवा औषधि की आवश्यकता नहीं होती। उनके द्वारा किये गये समस्त उच्चाटनादि प्रयोग बिना जप के ही सिद्ध हो जाते हैं ॥४॥ अन्य मन्त्रों के जपादि से भी यदि अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है और दुर्गा-सप्तशती के पाठ से भी मनोरथ की सिद्धि हो जाती है तो दोनों में कौन-सा श्रेष्ठ है? लोगों की इस शंका को सामने रखकर, भगवान् शंकर ने यही निर्णय किया कि दुर्गासप्तशती स्तोत्र ही सबसे बढ़कर है ॥५॥
 दुर्गासप्तशती का यथावत् पाठ करने वाले पुरुष के पुण्य की समाप्ति नहीं होती। यह देखकर भगवान् शंकर ने दुर्गासप्तशती के स्तोत्र को गुप्त कर दिया ॥६॥ जो कृष्णपक्ष की चतुर्दशी या अष्टमी को समाहित एकाग्रचित्त होकर दुर्गासप्तशती का पाठ करते हैं, वे निश्चय ही कल्याण के भागी होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥७॥ जो भगवती को अपनी समस्त सम्पत्ति समर्पित कर, दासरूप में पुनः उस

यो निष्क्रीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् । स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥९॥
 न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते । नाऽपमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०॥
 ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति । ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥११॥
 सौभाग्यादि च यत् किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने । तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥१२॥
 शनैस्तु जाप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्च कैः । भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥

सम्पत्ति का उपयोग करता है, भगवती उसके ऊपर निश्चय ही प्रसन्न होती है, अन्यथा प्रसन्न नहीं होतीं । श्रीमहादेवजी ने इसी प्रकार के प्रतिबन्धक कील से (कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को भगवती की प्रीति के लिए सारी सम्पत्ति समर्पित कर, पुनः भगवती की आज्ञा से उसका सदुपयोग करना) सप्तशती के फल को कीलित कर दिया है ॥८॥ जो लोग इस प्रकार के कीलक को करके नित्य ही दुर्गासप्तशती का पाठ करते हैं, वे सिद्ध हो जाते हैं, देवी का पार्षद (पास में रहने वाला) तथा गन्धर्व (उत्तम गायकों की एक विशेष देव जाति) हो जाते हैं ॥९॥ सर्वत्र विचरते रहने पर भी उन्हें कभी कोई भय नहीं रहता । उनकी अपमृत्यु नहीं होती और वे मर जाने पर मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१०॥ इस कीलक को जानकर ही उसका परिहार कर, दुर्गासप्तशती का पाठ करना चाहिए । यदि कीलक को न जान कर दुर्गासप्तशती का पाठ किया जाता है तो उसका विनाश हो जाता है । अतः कीलक (फल का विघ्न) तथा निष्क्रीलन (दुर्गा सप्तशती के फल के विघ्न को वारण करने की प्रक्रिया) को जान कर ही दुर्गासप्तशती का पाठ करना चाहिए ॥११॥ स्त्रियों में सौभाग्य, सन्तति तथा स्थिर लक्ष्मी आदि जो कुछ भी दिखाई पड़ता है वह भगवती की प्रसन्नता का ही फल है, इसलिए भगवती को प्रसन्न करने के लिए इस स्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए ॥१२॥ इस स्तोत्र का मन्द स्वर

● ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः । शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ ॐ ॥ १४ ॥ ●

इति श्रीभगवत्याः कीलकस्तोत्रं समाप्तम् ॥

ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

विनियोग- ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः, रात्रिदेवता,
स गायत्री छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रादेव्यक्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१॥
 ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्धतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥
 निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥३॥
 सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामत्रविक्षमहि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥४॥
 नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्धन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्धिनः ॥५॥
 यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्ख्ये । अथा नः सुतरा भव ॥६॥

से उच्चारण कर पाठ करने से स्वल्प सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, किन्तु उच्च स्वर से पाठ करने पर तो सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। अतः उच्च स्वर से ही इसका पाठ करना चाहिए ॥१३॥ जिस भगवती की प्रसन्नता से मनुष्य को ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, श्रेष्ठ सम्पत्ति, शत्रुनाश तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, उस जगद्धम्बा की स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करते ? ॥१४॥

इस प्रकार-आचार्य पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्रि कृत 'शिवदत्ती' हिन्दी व्याख्या सहित दुर्गासप्तशती में भगवती का कौलिक स्तोत्र समाप्त ।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातय ॥७॥
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

(ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १२७, मन्त्र १-८)

इति ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तं समाप्तम् ।

तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्^१

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम् । निद्रा भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥२॥

अर्धमात्रास्थितानित्या यानुच्चार्या विशेषतः । त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥३॥

त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत् । त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥४॥

विसृष्टी सृष्टिरूपां त्वं स्थितिरूपा च पालने । तथा संहति-रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५॥

महप्रविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥६॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय - विभाविनी । कालरात्रि-र्महारात्रि-र्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥७॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं हीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा । लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥

खड्गिणी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥९॥

१. तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त का अर्थ प्रथम अध्याय श्लोक ७०-८७ (पृष्ठ ५८-६०) तक में देखिये।

सौम्या सौम्यतराशेष- सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी। पराऽपराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥
 यच्च किञ्चित् क्वचिद्भुस्तु सदासहस्रखिलात्मिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥
 यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत् पात्यति यो जगत्। सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥
 विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च। कारितास्ते यतोऽतस्त्वांकः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥१३॥
 सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता। मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधु-कैटभौ ॥१४॥
 प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु। बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥१५॥

इति तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तं समाप्तम् ।

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्^१

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥१॥
 साब्रवीत्- अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यं च ॥२॥
 अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञाना विज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि।
 अहमखिलं जगत् ॥३॥ वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अघश्चोर्ध्वं च
 तिर्यक्चाहम् ॥४॥ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ

१. अथर्ववेद में देव्यथर्वशीर्ष पाठ का विशेष फल वर्णित है। इसके नित्यप्रति पाठ से देवी की कृपा
 शीघ्र प्राप्त होती है। यद्यपि सप्तशती पाठ का अङ्ग निश्चित कर कहीं इसका उल्लेख नहीं है, फिर भी
 सप्तशती पाठ से पहले इसका पाठ कर लेना अत्यधिक फलदायक सिद्ध होगा।

विभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥५॥ अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि । अहं
विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥६॥ अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय
सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति ॥७॥
ते देवा अब्रुवन्-

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥८॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणं
प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥९॥ देवीं वाचमजनयन्त देवा स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्त्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुष सुष्टुतैतु ॥१०॥ कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदिति दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१२॥ अदितिर्हजनिष्ट दक्ष
या दुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥१३॥ कामो योनिः कमला
वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुष्यैषा विश्वमातादि-
विद्योम् ॥१४॥ एषाऽऽत्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी । पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या । य
एवं वेदः शोकं तरति ॥१५॥ नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥१६॥
सैषाऽष्टौ वसवः। सैषैकादशः रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोपमा असोमपाश्च।
सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिन्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा
ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्र ज्योतीषि।

कलाकाष्ठादिकालरूपिणी तामहं प्रणामि नित्यम्। पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।
 अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥ १७ ॥ विद्यदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
 अर्घेन्दुलसितं देव्या वीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ १८ ॥ एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्ध-चेतसः । ध्यायन्ति
 पस्थानदमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १९ ॥
 वाङ्माया ब्रह्मसूतस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्। सूर्योऽवामग्नौत्र-बिन्दुसंयुक्छा-तृतीयकः नारायणेन
 संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः। विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥ २० ॥ हृत्पुण्डरीक-मध्यस्थो र्व
 प्रातः सूर्यसमप्रभाम्। पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभय-हस्तकाम्। त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे
 ॥ २१ ॥ नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्। महादुर्गप्रदामनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २२ ॥
 यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते
 अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपालक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते
 अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत
 एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥ २३ ॥ मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
 ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी। यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ २४ ॥
 तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्। नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णव-तारिणीम् ॥ २५ ॥
 इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चा
 स्थापयति-शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चाऽस्य पुरश्चर्याविधिः
 स्मृतः। दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते। महादुर्गाणि तरति महादेव्याः
 प्रसादतः ॥ २६ ॥ सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं

● नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति।
 ● नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति।
 ● प्रौमाश्विन्यां महादेवीसन्निधी जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद।
 इति देव्यथर्वशीर्ष समाप्तम्।

नवार्णमन्त्र-जपविधिः

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दांसि, श्रीमहाकाली-
 महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-
 महासरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे न्यासे च विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः— ब्रह्म-विष्णु-रुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दोभ्यो नमः,
 मुखे। महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये
 नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः, सर्वाङ्गे।
 करादिन्यासः— ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः।

विनियोग—तत्पश्चात् दाहिने हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य०' से लेकर 'जपे
 न्यासे च विनियोगः' तक पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे।

ऋष्यादिन्यास—'ब्रह्म-विष्णु-रुद्रऋषिभ्यो नमः' पढ़कर सिर का, 'गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दोभ्यो नमः'
 से मुख का, 'महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवताभ्यो नमः' से हृदय का, 'ऐं बीजाय नमः' से
 गुप्तांग का, 'ह्रीं शक्तये नमः' से पैर का, 'क्लीं कीलकाय नमः' पढ़कर नाभि का स्पर्श करे।

करादिन्यास—'ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' पढ़कर दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से अँगूठों का, 'ॐ ह्रीं

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै
विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः— ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ
चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः— ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ
चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासायाम्। ॐ यै नमः,
वामनासायाम्। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये। एवं विन्यस्याऽष्टवारं मूलेन च्यापकं कुर्यात्।

तर्जनीभ्यां नमः' कहकर अँगूठे से तर्जनी का, 'ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः' पढ़कर अँगूठे से अनामिका
का, 'ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः' से कानी अँगुलियों का तथा 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' पढ़कर हथेलियों एवं उनके पृष्ठभाग का स्पर्श करे।

हृदयादिन्यास— 'ॐ ऐं हृदयाय नमः' से हृदय का, 'ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा' से सिर का, 'ॐ क्लीं
शिखायै वषट्' से शिखा का, 'ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्' से दोनों बाहुओं का, 'ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय
वौषट्' पढ़कर दोनों नेत्रों का स्पर्श करे। 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्' से बायें हाथ
की हथेली पर दायें हाथ की अनामिका, मध्यमा अँगुलियों से ताली बजाये।

अक्षरन्यास— 'ॐ ऐं नमः, शिखायाम्' से शिखा का, 'ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे' से दाहिने नेत्र
का, 'ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे' पढ़कर बायें नेत्र का, 'ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे' से दाहिने कान का,
'ॐ मुं नमः, वामकर्णे' से बायें कान का, 'ॐ डां नमः, दक्षिणनासायाम्' से दाहिनी नाक का, 'ॐ
यै नमः, वामनासायाम्' पढ़कर बायीं नाक का, 'ॐ विं नमः, मुखे' से मुख का तथा 'ॐ च्चें नमः,

● दिङ् न्यासः— ॐ ऐं प्राच्यै नमः, ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं
● नैऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ
● चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं
● चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।

ध्यानम्

● खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्जूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषा वृताम्।
● नीलाश्रम-द्युतिमास्य-पाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हनुं मधुं कैटभम्॥ १॥
● अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुःकुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
● शूलं पाशसुदशनि च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥ २॥
● घण्टा-शूल-हलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्यप्रभाम्।
● गुह्ये' से गुदा का स्पर्श करे। इस प्रकार न्यास कर, मूल मन्त्र से आठ बार व्यापक (दोनों हाथों द्वारा
● मस्तक से पैर तक समस्त अंगों का) स्पर्श करे।

● दिङ् न्यास— 'ॐ प्राच्यै नमः' पढ़कर पूर्व की ओर, 'ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः' से अग्निकोण में, 'ॐ
● ह्रीं दक्षिणायै नमः' से दक्षिण दिशा में, 'ॐ ह्रीं नैऋत्यै नमः' से नैऋत्यकोण में, 'ॐ क्लीं प्रतीच्यै
● नमः' से पश्चिम में, 'ॐ क्लीं वायव्यै नमः' से वायव्य कोण में 'ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः' से
● उत्तर दिशा में, 'ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः' से ईशान कोण में, 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे
● ऊर्ध्वायै नमः' से ऊपर की ओर और 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः' पढ़कर नीचे की
● ओर नमस्कार करें।

गीरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा पूर्वमत्र सरस्वती-मनुभजे शुम्भादिदैत्यादिनीम् ॥ ३ ॥

ततः 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इति मालां सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ।

माला-प्रार्थना

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ १ ॥

अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे । जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्ध्ये ॥ २ ॥

तत्पश्चात् 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति नवार्णमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् ।

ततः—गुह्याऽतिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि !

त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।

इति पठित्वा देव्या वामकरे जपं निवेदयेत् ।

इति नवार्णमन्त्र-जप-विधिः समाप्तः ।

इसके बाद 'खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्छूलं' से लेकर 'शुम्भादिदैत्यादिनीम्' तक श्लोक पढ़ा जाय जोड़ कर भगवती श्रीदुर्गा का ध्यान करें ।

तत्पश्चात् 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' पढ़कर जपमाला का पूजन कर, 'ॐ मां माले महामाये' से लेकर 'प्रसीद मम सिद्ध्ये' पर्यन्त पढ़कर माला की प्रार्थना करे । तदनन्तर 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवार्णमन्त्र का एक सौ आठ (१०८) बार जप करे । तथा 'गुह्याऽतिगुह्यगोप्त्री त्वं' श्लोक पढ़कर एक आचमनी जल छोड़ते हुए देवी के वामहस्त में जप समर्पित करे ।

इस प्रकार दुर्गासप्तशती में नवार्णमन्त्रजपविधि समाप्त ।

सप्तशतीन्यासः

विनियोगः— प्रथम-मध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्नि-वायु-सूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्-यजुः-सामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवता-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

करन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ॥
अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घण्टास्वनेन नः पाहि चाप-ज्या-निः स्वनेन च ॥
तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥
मध्यमाभ्यां नमः ।

सप्तशतीन्यास— पश्चात् सप्तशती का विनियोग, न्यास एवं ध्यान करें ।

विनियोग— हाथ में जल लेकर 'प्रथम-मध्यमोत्तरचरित्राणां०' से 'जपे विनियोगः' तक पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे ।

करन्यास— 'ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा' से 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' पढ़कर अँगूठे का स्पर्श करे ।
'ॐ शूलेन पाहि नो०' से 'तर्जनीभ्यां नमः' पर्यन्त कहकर तर्जनी अँगुली का स्पर्श, 'ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०' से लेकर 'ॐ मध्यमाभ्यां नमः' तक पढ़कर मध्यमा अँगुलि का स्पर्श करे ।

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते । यानि चात्यर्थघोराणि ते रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥

अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥

कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इति करन्यासः ।

हृदयादिन्यासः

‘ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा०’ हृदयाय नमः । ‘ॐ शूलेन पाहि नो देवि०’ शिरसे स्वाहा ।

‘ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०’ शिखायै वषट् । ‘ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि०’ कवचाय हुम् ।

‘सौम्यानि यानि०’ से ‘अनामिकाभ्यां नमः’ तक पढ़कर अनामिका अँगुली का, ‘ॐ खड्ग-शूल-गदादीनि यानि०’ से ‘कनिष्ठिकाभ्यां नमः’ तक कहकर कानी अँगुली का तथा ‘ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे०’ से लेकर ‘करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः’ तक पढ़कर हथेलियों और उनके पृष्ठभाग का स्पर्श करे ।

हृदयादिन्यास—‘खड्गिनी शूलिनी०’ से हृदय का, ‘ॐ शूलेन पाहि नो०’ से मस्तक का, ‘ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०’ से शिखा का, ‘ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि’ से दाहिने हाथ की अँगुलियों से बायें कन्धे

‘ॐ खड्ग-शूल-गदादीनि०’ नेत्रत्रयायवौषट्। ‘ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे०’ अस्त्राय फट्।

इति हृदयादिन्यासः।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपति-स्कन्ध-स्थितां भीषणां कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्भस्ताभिरासेविताम्।
स हस्तैश्चक्र-गदा-ऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे॥

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

श्री दुर्गासप्तशती प्रथमोऽध्यायः (१)

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका
बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः, स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।

का और बायें हाथ की अँगुलियों से दाहिने कन्धे का, ‘ॐ खड्गशूल-गदादीनि’ से दोनों नेत्रों का स्पर्श
करे और ‘ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे०’ से बायें हाथ की हथेली पर दायें हाथ की अनामिका, मध्यमा अँगुलियों
से ताली बजावे। इसके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर ‘विद्युद्दाम-समप्रभां’ श्लोक पढ़कर भगवती श्रीदुर्गा का
ध्यान कर पाठ करें।

इस प्रकार सप्तशतीन्यास समाप्त।

विनियोग— हाथ में जल लेकर ‘ॐ प्रथमचरित्रस्य०’ से ‘जपे विनियोगः’ तक पढ़कर जल छोड़ दे।

विनियोगार्थ— प्रथम चरित्र के ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति,

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

॥ॐ नमश्चण्डिकायै॥

‘ॐ ऐं’ मार्कण्डेय उवाच ॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः। निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥२॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः। स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥३॥

रक्तदन्तिका बीज, अग्नितत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली रूपी देवता के प्रसन्नार्थ प्रथमचरित्र के जप (पाठ) में विनियोग करने का विधान है।

ध्यान— भगवान् विष्णु के क्षीरसागर में शयन करने पर महा बलवान् दैत्य मधु और कैटभ के संहार-निमित्त पद्मयोनि-ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन महाकाली देवी का मैं स्मरण करता हूँ। वे अपने दस भुजाओं में क्रमशः खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ (फेंककर चलाया जाने वाला एक प्राचीन अस्त्र), शूल, भुशुण्डि (बन्दूक), मस्तक और शंख धारण करती हैं। वह तीन नेत्रों से युक्त हैं और उनके सम्पूर्ण अंगों में दिव्य आभूषण (कभी जीर्ण न होने वाले) पड़े हैं। नीलमणि के सदृश उनके शरीर की आभा है एवं वे दशमुखी तथा दस पादों वाली हैं।

मार्कण्डेय जी ने कहा— ॥१॥ सूर्य के पुत्र सावर्णि, जिनकी गणना अष्ट मनुओं में की गयी है, के उत्पन्न होने की कथा का सविस्तार वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२॥ सूर्यपुत्र महाभाग सावर्णि भगवती

● स्वरोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥४॥
 ● तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥५॥
 दुर्गा तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः। न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥६॥ प्र
 स ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्। आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥७॥ थ
 प्त अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्बलस्य दुरात्मभिः। कोशो बलं चापहतं तत्राऽपि स्वपुरे ततः ॥८॥ मो
 स ततो मृगयाव्याजेन हतस्वाम्यः स भूपतिः। एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥९॥ ५
 ती

● महामाया की कृपा से जैसे मन्वन्तर के स्वामी हुए, मैं वही घटना कहता हूँ ॥३॥ प्राचीनकाल में
 ● स्वरोचिष नामक मन्वन्तर में सुरथ नामक एक बहुत ही प्रतापी राजा हुए थे। उनकी उत्पत्ति चैत्रवंश
 ● में हुई थी और सारी पृथ्वी पर उनका एकछत्र राज्य था ॥४॥
 ● वे प्रजाओं को अपनी सन्तान के समान पालन-पोषण करते थे। इतना होने पर भी कोलविध्वंसी
 ● नामक क्षत्रिय उनके शत्रु बन बैठे थे ॥५॥ राजा सुरथ दण्डनीति का अत्यन्त कड़ाई से पालन करते
 ● थे। राजा के विपक्षियों के साथ युद्ध हुआ। यद्यपि कोलविध्वंसी लोग अल्पसंख्यक वर्ग के थे, फिर
 ● भी उन लोगों ने राजा सुरथ पर विजय पा ली थी ॥६॥ राजा, शत्रुओं से पराजित होकर अपने नगर
 ● को लौट आये और उनके देश तक ही उनका राज्य सीमित हो गया (पहले से अधिकृत की गई भूमि
 ● उन्हें छोड़नी पड़ी), किन्तु तिस पर भी विद्रोहियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और राजा सुरथ पर पुनः
 ● आक्रमण कर दिया ॥७॥ राजा के बल-पौरुष का हास हो चुका था, इसलिए ऐसे सुयोग को मन्त्रियों
 ● ने हाथ से जाने देना उचित न समझा और उन दुरात्मा मन्त्रियों ने राजकीय सेना, वाहन, कोषागार
 ● आदि पर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया ॥८॥ राजा का स्वामित्व छिन गया था, इसलिए वे घोड़े

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेघसः । प्रशान्तश्चापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥
 तस्थौ कञ्चित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥११॥
 सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥
 मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा । न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥१३॥
 मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते । ये ममानुगतानित्यं प्रसाद-धन-भोजनैः ॥१४॥
 अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् । असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥१५॥

पर सवार होकर अकेले ही आखेट के बहाने घने वन के भीतर चल दिये ॥१॥ उस वन में पहुँचकर
 राजा सुरथ को विप्रों में श्रेष्ठ मेधा मुनि का आश्रम दिखाई पड़ा, उनके आश्रम में अनेकों मांसभक्षी
 हिंसक पशु, अपनी हिंसावृत्ति को छोड़कर अत्यन्त शान्त भाव से विचरण करते थे । मुनि के शिष्य
 गणों से उस आश्रम तथा वन का सौन्दर्य खिल उठा था ॥१०॥
 आश्रम में राजा के उपस्थित होने पर मुनि ने उनका सत्कार किया । राजा भी कुछ दिनों तक मुनि
 के आश्रम में रहकर विहार करते रहे ॥११॥ मोह-माया से ग्रस्त होकर एक बार वहाँ राजा अपने मन
 में इस प्रकार चिन्तन करने लगा-जो नगर पूर्वकाल में मेरे पूर्वजों द्वारा शासित और पालित था, आज
 वही नगर मुझसे हीन होकर वीरान हो रहा है । न जाने, मेरे अधम कर्मचारी उसकी धर्मपरायणता के
 साथ रक्षा करते हैं या नहीं । मेरा हाथी, जो सदा अपने शरीर से मद बहाया करता था और वीर था,
 न जाने वह किस अवस्था में होगा ? जो लोग मेरी कृपा-दृष्टि, धन और भोजन के लिए लालायित
 रहकर मेरा अनुगमन करते थे ॥१२-१४॥ वे लोग अब निश्चय ही अन्य राजाओं के आश्रित होंगे ।

सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति । एतच्चाऽन्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥१६॥
 तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः । स पृष्ठस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥१७॥
 स-शोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥
 प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥
 वैश्य उवाच ॥२०॥ समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥
 पुत्र - दारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः । विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥२२॥
 वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाऽऽप्तबन्धुभिः । सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाऽकुशलात्मिकाम् ॥२३॥

मेरे धन का उन लोगों के द्वारा दुरुपयोग किये जाने से अब कोष निश्चय ही रिक्त हो चुका होगा । इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ राजा के मन में उथल-पुथल मचा रही थीं ॥१५-१६॥ एक दिन मेधा मुनि के आश्रम के निकट एक वैश्य को देखकर राजा उससे पूछ बैठे-‘भाई, तुम कौन हो ? इस स्थान में तुम्हारे आने का क्या अभिप्राय है ? ॥१७॥

तुम तो बहुत ही शोकाकुल और अन्यमनस्क से लग रहे हो ।’ राजा के इस प्रेमपूर्ण प्रश्न को सुनकर वह वैश्य राजा को नमस्कार करके विनीत स्वर में बोला ॥१८-१९॥

वैश्य ने राजा से कहा- ॥२०॥ राजन् ! मैं धनिक वर्ग में उत्पन्न एक वैश्य हूँ, मेरा नाम समाधि है ॥२१॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से वशीभूत होकर मुझे घर से निष्कासित कर दिया है । इस समय मैं स्त्री, पुत्र और धन से रहित हो गया हूँ ॥२२॥ मेरे स्वजनो ने ही मेरे धन का अपहरण

प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चाऽत्र संस्थितः । किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥
 कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥२५॥
 राजोवाच ॥२६॥ यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥२७॥
 तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२८॥
 वैश्य उवाच ॥२९॥ एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥३०॥
 किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः । यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥३१॥

कर मुझे उसके अधिकार से च्युत कर दिया है। इसलिए मैं खिन्न-चित्त से वन में आ गया हूँ। इस समय मैं नहीं जानता कि मेरे कुटुम्बियों की क्या दशा है? वे लोग घर में सकुशल हैं या नहीं, मुझे इसके सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं है ॥२३-२४॥ मैं विचार कर रहा हूँ कि मेरे वे पुत्र कैसे हैं? वे सदाचारी हैं या दुराचारी? ॥२५॥

राजा ने वैश्य से प्रश्न किया- ॥२६॥ जिन स्वजनों ने धन के लोभ में पड़ कर तुम्हें घर से बाहर निकाल दिया, उन स्वार्थी बन्धुओं के प्रति तुम्हें इतनी ममता किसलिए है? ॥२७-२८॥

वैश्य ने उत्तर दिया- ॥२९॥ आपका मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार पूछना उचित ही है ॥३०॥ मैं क्या करूँ, मेरा मन कुटुम्बियों के प्रति निर्दय व्यवहार का नहीं हो रहा है। जिन लोगों ने धन की आकांक्षा से आदर, प्रेम और आत्मीयता की भावना का परित्याग कर मुझे इस दशा में पहुँचा दिया है, उन्हीं लोगों के प्रति मेरे मन में अगाध स्नेह तथा ममत्व का भाव है। हे महानुभाव! यह सब जानकर भी बन्धु-बान्धवों के प्रति मेरे मन में जो प्रेम का समुद्र हिलोरें ले रहा है, यह क्या है-जानने का प्रयत्न करने

पतिस्वजनहार्दं च हार्दिं तेष्वेव मे मनः । किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥३२॥
 यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु । तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥३३॥
 करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥३४॥
 मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥ ततस्तौ सहितौ विप्रं तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥
 समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः । कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
 उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्य-पार्थिवौ ॥३८॥
 राजोवाच ॥३९॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥

पर भी मैं इस बात के रहस्य को नहीं समझ पा रहा हूँ ॥३१-३२॥ उन लोगों के वियोग में मैं उसाँसे ले
 रहा हूँ, जिसके फलस्वरूप मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा है । उन लोगों में मेरे प्रति प्रेम का नितान्त
 अभाव है, तो भी मेरा मन उनके लिए तड़प रहा है, इसलिए मैं क्या करूँ ? ॥३३-३४॥
 मार्कण्डेय मुनि ने कहा- ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! तत्पश्चात् राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य एक
 साथ ही मेधा मुनि की सेवा में उपस्थित हुए ॥३६॥
 और उनके प्रति उचित सम्मान दिखाकर वहीं बैठ गये । तब वैश्य और राजा ने परस्पर कुछ वार्ता
 प्रारम्भ किया ॥३७-३८॥
 तब राजा बोले- ॥३९॥ भगवन् ! मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ । आप उसे कृपा करके
 बताइए ॥४०॥

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्तता विना। ममत्व गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥
 जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम। अयं च निकृतः पुत्रैर्दरिभृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥
 स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति। एवमेष तथाऽहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥
 दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ। तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
 ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥
 ऋषिरुवाच ॥४६॥ ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥

मेरा मन स्ववश में न रहने के कारण बहुत ही क्लेशित है। जो राज्य मेरे हाथ से छीन गया है, उसके लिए अभी तक मेरे मन में पहले की ही तरह ममता बनी हुई है ॥४१॥ हे मुनियों में श्रेष्ठ ! यह बात मैं समझता हूँ कि अब उस पर मेरा स्वत्व नहीं रह गया है, उसे अन्य लोगों ने हस्तगत कर लिया है, फिर भी अज्ञानियों की तरह से उसी के मोह में लिप्त हूँ, यह सब क्या बात है? मेरे ही समान यह वैश्य भी अपने घर से अनादृत हो पुत्र, स्त्री और सेवकों द्वारा परित्यक्त होकर निष्कासित कर दिया गया है ॥४२॥ इसके स्वजनों ने भी इसका परित्याग कर दिया है। यह जानते हुए भी यह वैश्य उन्हीं लोगों के स्नेहपाश में आबद्ध है। हम दोनों का ही हृदय इन सब बातों से अत्यन्त क्षुब्ध है ॥४३॥ दोषयुक्त विषय में भी अभी तक मेरा मन ममतावश आकर्षित हो रहा है। हे महाभाग ! हम दोनों ही समझदार हैं, फिर भी हम में जो मोह की प्रबल धारा उमड़ पड़ी है, वह क्या है? ॥४४॥ हम दोनों में प्रत्यक्ष रूप से अज्ञान के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं ॥४५॥
 तब ऋषि ने कहा- ॥४६॥ हे महाभाग ! विषय-मार्ग का ज्ञान सभी प्राणियों में विद्यमान होता

• विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्। दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्वात्रावन्धास्तथापरे ॥४८॥
 • केचिद्दिवा तथा रात्रौ पाणिनस्तुल्यदृष्टयः। ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥४९॥
 • यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशु-पक्षि-मृगादयः। ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥५०॥
 • मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः। ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१॥
 • कणमोक्षादृतान् मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा। मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥५२॥
 • लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि। तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातितः ॥५३॥

है ॥४७॥ इसी प्रकार विषय भी सभी जीवों के भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ प्राणियों को दिन में नहीं दिखाई
 पड़ता, ठीक इसके विपरीत कुछ जीव रात्रि में नहीं देख पाते ॥४८॥ इनके अतिरिक्त कुछ जीव ऐसे भी
 होते हैं, जो समान रूप से दिन और रात्रि में देख सकते हैं। यह बात सत्य है कि सभी प्राणियों में मनुष्य
 वर्ग अधिक समझदार होते हैं। किन्तु केवल वे ही इस प्रकार समझदार नहीं होते ॥४९॥ उनके अतिरिक्त
 पशु-पक्षी और मृगादि जीव भी समझदार होते हैं। मनुष्यों की बुद्धि भी पशु-पक्षियों और मृगादि जीवों
 के ही समान होती है ॥५०॥ जैसी मनुष्यों की समझ होती है, वैसी ही उन मृगादि जीवों की भी होती
 है। साथ-ही-साथ अन्य बातें भी प्रायः इन दोनों में समान रूप से पायी जाती हैं। इन पक्षियों को
 ही देखो, समझदार होते हुए भी स्वयं क्षुधातुर रहकर अपने बच्चों की चोंच में स्नेहवश अन्न के कण
 डाल देते हैं ॥५१॥ हे राजन्! क्या तुम नहीं जानते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश
 अपने उपकार के बदले उपकृत होने के निमित्त पुत्रों की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ यद्यपि उन सब में भी
 समझदारी का भाव होता है, फिर भी वे संसार की स्थिति (जन्म-मृत्यु की परम्परा) को बनाये रखने

• महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा। तन्नाऽत्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥
 • महामाया हरेश्चैषा तय सम्पोहते जगत्। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥
 • बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। तथा विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥
 • सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये। सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुर्भूता सनातनी ॥५७॥
 संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥५९॥ भगवन् का हि सा देवि महामायेति यां भवान् ॥६०॥

• प्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज। यत्प्रभावा च सा देवि यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥

• वाली महामाया भगवती के प्रभाव द्वारा मोहरूपी भँवर में डाल दिये जाते हैं और उसी में वे जीव
 • डूबते-उतराते रहते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। जगत्पिता विष्णु भगवान् की
 • योगनिद्रारूपिणी महामाया से ही यह सारी सृष्टि मुग्ध हो रही है। वे महामाया ज्ञानियों के चित्त को
 • भी बलात् आकर्षित करके मोहसागर में डाल देती हैं। वे ही समस्त सृष्टि की जगद्धात्री हैं तथा जब
 • वे ही प्रसन्न होती हैं तब मनुष्यों के उद्धार के लिए मुक्तिलाभ का वरदान भी देती हैं। वे ही पराविद्या
 • (विद्याएँ दो होती हैं-परा और अपरा) संसार-बन्धन और मोह-ममता उत्पन्नकर्त्री सनातनी देवी हैं तथा
 • समस्त ईश्वरों की भी अधिष्ठात्री हैं ॥५३-५८॥

• तब राजा ने प्रश्न किया- ॥५९॥ भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहकर सम्बोधित कर रहे हैं, वे
 • देवी कौन-सी हैं? ॥६०॥ हे ब्रह्मन्! उनका प्रादुर्भाव किस प्रकार से हुआ? उनके चरित्र कौन-कौन
 • से हैं? ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ मुनि! उन देवी की उपरोक्त कथाएँ मैं आपके श्रीमुख से श्रवण करना चाहता

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

ऋषिरुवाच ॥६३॥ नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तथा सर्वमिदं ततम् ॥६४॥

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते । योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्प्रेकार्णवीकृते ॥६६॥

आस्तीर्य शेषमभ्यस्तु कल्पान्ते भगवान् प्रभुः । तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधु-कैटभौ ॥६७॥

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ । स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥६८॥

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् । तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥६९॥

हूँ ॥६१-६२॥ ऋषि ने कहा- ॥६३॥ हे राजन् ! यथार्थ में देवी का स्वरूप नित्य और सनातन है ।

यह समस्त जगत् उन्हीं का स्वरूप है और वे ही देवी समस्त विश्व के चराचर प्राणियों में व्याप्त

हैं ॥६४॥ उनकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से होती है । वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ । यद्यपि वे जन्मरहित और

नित्यस्वरूपा हैं, तो भी जब देवताओं की कार्यसिद्धि के निमित्त अवतार ग्रहण करती हैं ॥६५॥ उस

समय उन्हें लोक में अवतरित होना माना जाता है । कल्पान्त में जब समस्त विश्व महासमुद्र में विलीन

हो रहा था और सब जीवों के पालनकर्ता भगवान् विष्णु शेषशय्या पर योगनिद्रा में अभिभूत हो रहे

थे, उस समय उनके कानों की मैल से दो भयंकर दानवों की उत्पत्ति हुई । वे असुर, मधु, कैटभ नाम

से जगत् में विख्यात हुए ॥६६-६७॥

जन्म लेने के बाद ही वे दानव सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का वध करने को उद्यत हो गये । उस समय

ब्रह्माजी भगवान् विष्णु के नाभिकमल में अवस्थित थे ॥६८॥ अपने पास राक्षसों के उपस्थित होने पर

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्। विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम् ॥७०॥

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥७१॥

ब्रह्मोवाच ॥७२॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥७३॥

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता। अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥७४॥

त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। त्वयैतद्धारयति विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥७५॥

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमतस्यन्ते च सर्वदा। विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥७६॥

तथा संहति रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये। महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥७७॥

वे निद्राभिभूत भगवान् को जागृत करने के लिए भगवान् के नेत्रों में योगनिद्रा की स्तुति करना प्रारम्भ

किया ॥६९॥ भगवान् की वह अद्वितीय शक्ति ही जगद्धात्री, विश्व की अधिष्ठात्री तथा संसार का पालन

और संहार करने वाली मानी गयी है, उन्हीं योगमाया भगवती निद्रा देवी की ब्रह्माजी आराधना करने

लगे ॥७०-७१॥ ब्रह्माजी बोले-॥७२॥ देवि ! तुम्हीं स्वाहा, स्वधा और वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारा

ही रूप है ॥७३॥ तुम्हीं प्राणदात्री अमृतरूपा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार और मकार-इन तीनों

मात्राओं में तुम्हारा ही अवस्थान है। इन तीन मात्राओं से भिन्न जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका

उच्चारण विशेष रूप से नहीं हो सकता, वह भी तुम्हीं हो। हे देवि ! तुम्हीं सन्ध्या, सावित्री तथा परम जननी

स्वरूपा हो। तुम्हीं इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किये हो। तुम्हारे ही द्वारा इस विश्व की उत्पत्ति होती है।

तुम्हीं पालनकर्त्री और अन्त में सब जीवों का संहार करती हो। जगत् की उत्पत्ति में तुम सृष्टिरूपा, पालनकाल

में स्थितिस्वरूपिणी तथा कल्पान्त में संहारस्वरूपा हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति,

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी। प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥७८॥
 कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥७९॥
 लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च। खड्गिणी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥८०॥
 शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा। सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥८१॥
 परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी। यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥८२॥
 तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा। यया त्वया जगत्त्रष्टा जगत्पात्यति यो जगत् ॥८३॥

महामोहरूपा, महादेवी और महासुन्दरी हो। तुम्हीं तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम) की उत्पन्नकारिणी हो ॥७४-७८॥ तुम्हीं भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि हो। तुम्हीं श्री, ईश्वरी, ह्री और बोधस्वरूपा बुद्धि भी हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम्हीं खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा, गदा, चक्र, शंख और धनुषधारिणी भी हो। बाण, भुशुण्डि, परिघ आदि तुम्हारे ही अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो। इतना ही नहीं, वरन् विश्व में जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सब में तुम्हारी सुन्दरता कहीं अधिक है ॥७९-८१॥ पर तथा अपर-इन दोनों विद्याओं से परे रहने वाली परमेश्वरी भी तुम्हीं हो। हे देवि ! विश्व के सभी सत्-असत् पदार्थों में पायी जाने वाली शक्ति भी तुम्हीं हो ॥८२॥ ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति अवर्णनीय है। इस विश्व के रचयिता, पालनकर्ता और संहारक भगवान् विष्णु को भी जब तुमने निद्रा के वशीभूत कर दिया है तब तुम्हारी स्तुति के योग्य इस ब्रह्माण्ड में कौन है। मुझे, भगवान् शिव तथा विष्णु को भी तुम्हीं ने शरीर धारण करने

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः। विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥८४॥
 कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत्। सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥८५॥
 मोहयेतो दुराधर्षावसुरौ मधु-कैटभौ। प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥८६॥
 बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥८७॥
 ऋषिरुवाच ॥८८॥ एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥८९॥
 विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधु-कैटभौ। नेत्रास्य-नासिका-बाहु - हृदयेभ्यस्तथोरसः ॥९०॥
 निर्गम्य दशनि तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥९१॥
 में बाध्य किया है ॥८३-८४॥ अतएव तुम्हारी स्तुति की सामर्थ्य किसमें है। हे देवि ! तुम तो अपने
 इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो गयी हो ॥८५॥ इन दोनों अजेय असुरों को तुम मोहग्रस्त करके
 भगवान् विष्णु की निद्रा भंग कर दो। इसके साथ ही भगवान् के भीतर इन मधु और कैटभ नाम के महा
 असुरों के संहार की बुद्धि भी उत्पन्न करो ॥८६-८७॥
 ऋषि ने कहा-॥८८॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु को जगाने के लिए जिस समय ब्रह्मा जी ने
 उसकी अधिष्ठात्री देवी का स्तवन किया, उस समय वे महामाया भगवान् के नेत्र, मुख, नासिका,
 बाहु, हृदय और वक्षस्थल से बाहर आकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी के सम्मुख आ उपस्थित हुई।
 योगनिद्रा से रहित होकर जगत्पति भगवान् जनार्दन उस एकार्णव के जल में शेषशय्या से जागृत हो
 गये। नींद से मुक्त होते ही भगवान् ने उन दोनों दैत्यों को देखा। वे दोनों ही दुरात्मा दैत्य मधु और

एकाणविऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ । मधु - कैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥९२॥
 क्रोधरक्तेक्षणावतुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ । समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
 पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः । तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
 उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तौ ब्रियतामिति केशवम् ॥९५॥
 श्रीभगवानुवाच ॥९६॥ भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
 किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

कैटभ अत्यन्त पराक्रमी और बलशाली थे ॥८९-९२॥ वे दोनों क्रोध से आँखें लाल करके ब्रह्माजी
 को निगल जाना चाहते थे । ऐसी स्थिति में भगवान् विष्णु ने उन दोनों राक्षसों के साथ पाँच हजार
 वर्ष तक लगातार बाहुयुद्ध किया । वे दोनों बल के दर्प से दर्पित हो रहे थे । महामाया ने उन दोनों
 असुरों को अपने प्रभाव से मोहग्रस्त कर दिया था ॥९३-९४॥ तब उन राक्षसों ने विष्णु भगवान् से
 कहा-हम तुम्हारे शौर्य से अत्यन्त प्रसन्न हैं । तुम हम लोगों से कोई इच्छित वर माँग लो ॥९५॥
 उनकी बात सुनकर भगवान् ने कहा- ॥९६॥ यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो, तो तुम्हारी मृत्यु मेरे
 हाथों से हो । मुझे यही वर चाहिए । इसके सिवाय मुझे अन्य किसी प्रकार के वरदान की आवश्यकता
 नहीं है ॥९७-९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥ वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥१००॥

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥ तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्ख-चक्र-गदाभृता ।

कृत्वा चक्रेण वैच्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१०३॥

एवमेवा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ ऐं ॐ ॥१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधु-कैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

उवाच १४, अर्धश्लोका २४, श्लोकाः ६६ एवमादितः ॥१०४॥

ऋषि कहने लगे-॥९९॥ जब उन राक्षसों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को भ्रमवश जलमग्न समझा, तब भगवान् से कहा-मेरा वध किसी शुष्क स्थल (सूखे स्थान अर्थात् जिस स्थान पर पृथ्वी जल में न डूबी हो) में करो ॥१००-१०१॥

ऋषि ने कहा- ॥१०२॥ तब 'तथाऽस्तु' कहकर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् विष्णु ने उन दोनों दैत्यों के मस्तक अपनी जाँघों पर रखकर सुदर्शन चक्र के द्वारा काट दिये ॥१०३॥

यह महामाया देवी ब्रह्मा जी की स्तुति से सन्तुष्ट होकर स्वयं ही आविर्भूत हुई थीं । अब हम तुमसे उनके प्रभाव की महिमा का वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो ॥१०४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय पुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

मधु-कैटभ-वध नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः (२)

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्हृषिकेशः, उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु-कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां दण्डं शक्तिपद्मं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शनी च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥

‘ॐ ह्रीं’ ऋषिरुवाच ॥१॥

देवासुरमभूद् युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥२॥

विनियोग- हाथ में जल लेकर ‘ॐ मध्यमचरित्रस्य०’ से आरम्भ कर ‘मध्यमचरित्रजपे विनियोगः’ पर्यन्त विनियोग-वाक्य पढ़कर भूमि पर जल गिरा दे ।

विनियोगार्थ- इस मध्यम चरित्र के विष्णु भगवान् ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायुतत्त्व और यजुर्वेद स्वरूप माना गया है । श्रीमहालक्ष्मी की प्रसन्नता के निमित्त मध्यम चरित्र के पाठ में इसका विनियोग वर्णित है । ध्यान में कमलासन पर आसीन प्रसन्नवदना महिषासुरमर्दिनी भगवती श्रीमहालक्ष्मी का ध्यान करता हूँ । जिनके हाथ में रुद्राक्ष की माला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, सुरापात्र, शूल, पाश और चक्र सुशोभित हैं ।

ऋषि ने कहा- ॥१॥ प्राचीन काल में देवताओं और दानवों में एक सौ वर्ष तक तुमुल युद्ध हुआ था । इस युद्ध में दानवों का स्वामी महिषासुर तथा देवताओं के अधिपति इन्द्रदेव थे ॥२॥

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसेन्यं पराजितम्। जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभूमहिषासुरः ॥३॥
 ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्। पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥४॥
 यथाकृतं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्। त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥५॥
 सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च। अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥६॥
 स्वर्गात्रिराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि। विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥७॥
 एतद्धः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्। शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥८॥

उस भीषण द्वन्द्व-युद्ध में देवताओं की सेना महाबलवान् दैत्यों के आगे टिक न सकी। समस्त देवताओं पर विजयलाभ करके दैत्यराज महिषासुर ने इन्द्र के सिंहासन पर अपना आधिपत्य जमा लिया ॥३॥ तदनन्तर हारे हुए सभी देवगण सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी को अगुआ बनाकर उस स्थान पर गये, जहाँ भगवान् शिव तथा विष्णु विराजमान थे ॥४॥ वहाँ जाकर देवताओं ने महिषासुर के शौर्य तथा अपनी पराजय का आद्योपान्त वर्णन किया ॥५॥ देवताओं ने कहा-भगवन् ! महाबली महिषासुर सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, इन्द्र, यम, वरुण तथा अन्यान्य देवताओं के अधिकार हस्तगत करके स्वयं ही सब देवों का स्वामी बन गया है ॥६॥ उस विधर्मी महिषासुर ने सभी देवों को उनके स्थान-स्वर्ग से च्युत कर दिया है और अब वे निष्कासित देव भूतल पर मनुष्यों के समान भटक रहे हैं ॥७॥ असुरों की यह सारी घटना मैंने आप लोगों के सम्मुख निवेदित कर दी। अब हम देवगण आपके शरणापन्न हुए हैं। आप विचार करके उस दानव के वध का कोई उपाय बतलाइए-॥८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शम्भुश्च भृकुटीकुटिलाननौ ॥९॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥१०॥
अन्येषांचैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥११॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१२॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१३॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् । याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१४॥

देवताओं के मुख से ऐसी बात सुनकर भगवान् विष्णु और शिवजी दैत्यों पर बहुत ही कुपित हुए । इस काण्ड से उन देवाधिदेव की भौहे चढ़ गई और मुँह टेढ़ा हो गया ॥९॥ तदनन्तर अत्यन्त क्रोधित चक्रपाणि विष्णु भगवान् के मुख से एक महान् तेज का आविर्भाव हुआ । फिर ब्रह्मा और शंकर के शरीर से भी वैसा ही तेज निकला ॥१०॥ इसी प्रकार इन्द्रादि अन्य देवों के शरीर से भी उसी प्रकार का तेजपुंज उत्पन्न हुआ । निकलने के बाद ही वे सभी तेजपुंज परस्पर मिलकर एक हो गये ॥११॥ वह महान् तेजपुंज ज्वलन्त पर्वत के सदृश जान पड़ने लगा । देवताओं ने देखा कि उसकी ज्वालाएँ समस्त दिग्-दिगन्तों में व्याप्त हो रही हैं ॥१२॥ समस्त देवों के शरीर से प्रादुर्भूत वह तेजपुंज अतुलनीय था । उस तेजपुंज के एक साथ मिलित होने से वह नारी के रूप में परिवर्तित हो गया और अपने प्रकाश से प्रकाशित होकर त्रैलोक्य में छा गया ॥१३॥ भगवान् शिव के शरीर से निकले हुए तेज के द्वारा महामाया देवी का मुख प्रकट हुआ, यमराज के तेज से देवी के सिर के केश निकले और विष्णु भगवान् के तेज से उनकी भुजाओं का निर्माण हुआ ॥१४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाऽभवत्। वारुणेन च जङ्घोरु नितम्बस्तेजसा भुवः ॥१५॥
 ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कस्तेजसा। वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥१६॥
 तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा। नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकस्तेजसा ॥१७॥
 भ्रुवौ च सन्ध्योस्तेजः श्रवणावनिलस्य च। अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥१८॥
 ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषादिताः ॥१९॥
 शूलं शूलाद् विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्। चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥२०॥
 शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः। मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१॥

चन्द्रमा के तेज से स्तनद्वय, इन्द्र के तेज से कटि भाग, वरुण के तेज से जाँघ तथा पैर की पिंडली और पृथ्वी के तेज से नितम्ब की उत्पत्ति हुई ॥१५॥ ब्रह्मा के तेज से दोनों पैर तथा सूर्य के तेज से अंगुलियाँ उत्पन्न हुई। अष्ट वसुओं के तेज से हाथों की अंगुलियाँ और कुबेर के तेज से नासिका निर्माण हुआ ॥१६॥ प्रजापति के तेज से दन्तावली तथा अग्नि के तेज से तीन नेत्रों का प्रादुर्भाव हुआ ॥१७॥ सन्ध्या के तेज से भ्रुकुटी (दोनों भौहें), वायु के तेज से कान उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्य सभी देवों के मिलित तेज से देवी की उत्पत्ति हुई ॥१८॥ सम्पूर्ण देवों के मिलित तेज से प्रादुर्भूत उस देवी की मूर्ति को देखकर महिषासुर द्वारा सन्तप्त देवता लोग अत्यन्त प्रमुदित हुए ॥१९॥ पिनाकी-शंकर भगवान् ने अपने प्रमुख अस्त्र शूल में से एक शूल उन्हें दिया, फिर भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से दूसरे नये चक्र का निर्माण करके देवी को प्रदान किया ॥२०॥ वरुणदेव ने शंख, अग्निदेव ने शक्ति, वायु ने धनुष तथा बाण से पूरित दो तरकस देवी को अर्पित किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कलिशादमराधिपः। ददौ तस्यै महस्त्राश्वो घण्टामैरावताद गजात् ॥२२॥

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् । हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२९॥
 ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः । शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥
 नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् । अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥
 सम्मानिता ननादोच्चैः सादृहासं मुहुर्मुहुः । तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥
 असायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् । चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च च कम्पिरे ॥३३॥
 चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः । जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

सागर ने उन्हें सुन्दर कमल-पुष्प भेंट किये और हिमालय पर्वत ने उनकी सवारी के लिए सिंह तथा
 अनेकों प्रकार के रत्नादि भेंट किये ॥२९॥ धन के स्वामी कुबेर ने मधु से पूरित पात्र दिया । सम्पूर्ण
 पृथ्वी को धारण करने वाले नागराज शेष ने बहुमूल्य मणियों से विभूषित ॥३०॥ नागहार का उपहार
 दिया । इसी प्रकार अन्य देवों ने भी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र और आभूषण देकर देवी का सम्मान
 किया ॥३१॥ इसके अनन्तर उच्च स्वर से अदृहास करते हुए देवी ने बारम्बार गर्जन किया । उनके
 भयंकर गर्जन से सम्पूर्ण आकाश गुंजायमान हो उठा ॥३२॥ देवी के घोर गर्जन से उत्पन्न भयंकर रव
 (शब्द) कहीं समा न सका, जिससे तीनों लोक क्षुभित हुए और समुद्र भी कांप उठा ॥३३॥ पृथ्वी में
 भूकम्प आ गया और समस्त पर्वत हिलते हुए थरथराने लगे । उस समय देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न
 होकर भगवती सिंहवाहिनी देवी का जय-जयकार किया ॥३४॥

● तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्ति-नप्रात्म-मूर्तयः। दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥३५॥
 ● सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः। आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥३६॥
 दुर्गा अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः। स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥
 स पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्। क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥३८॥
 प्लादिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्। ततः प्रववृते युद्धं तथा देव्या सुरद्विषाम् ॥३९॥
 स शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपित - दिगन्तरम्। महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥४०॥
 ती ध्या यः

इसके पश्चात् महर्षियों ने भी नतमस्तक होकर देवी की स्तुति की। समस्त विश्व को क्षुब्ध देखकर असुर लोग अपनी सम्पूर्ण सेना को कवचादि से सज्जित कर, हाथों में अपने आयुधों को लेकर एकाएक उठ खड़े हुए, उस समय महिषासुर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोल उठा-‘आः ! यह सब क्या हो रहा है !’ ॥३५-३६॥ तदनन्तर सम्पूर्ण असुरों से घिरा हुआ वह महिषासुर देवी की भयंकर नाद की ओर लक्ष्य करके दौड़ पड़ा। उसने सबसे आगे जाकर देखा-वह देवी अपनी अलौकिक प्रतिभा से त्रैलोक्य को प्रकाशित कर रहीं थीं ॥३७॥ उनके पदभार से पृथ्वी रसातल में बोझिल होकर दबी जा रही थी। मस्तक के मुकुट से आकाश में रेखा-सी खिंची हुई दिख रही थी तथा वे अपने धनुष के टंकार से सप्त पाताल लोकों को क्षुभित कर रही थीं ॥३८॥ अपनी सहस्र भुजाओं से देवी समस्त दिशाओं-को आच्छादित करके खड़ी थीं। इसके पश्चात् देवी के साथ दैत्यों का घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥३९॥ भौंति-भौंति के अस्त्रों-शस्त्रों के प्रहार से सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। महिषासुर का सेनापति चिक्षुर नामक महान् असुर था ॥४०॥

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः । रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥४१॥
 अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः । पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥४२॥
 अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे । गज-वाजि - सहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥४३॥
 वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत । विडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥४४॥
 युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः । अन्ये च तत्रायुतशो रथ-नाग-हयैर्वृताः ॥४५॥
 युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः । कोटि-कोटि-सहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥४६॥

देवी के साथ उस महाबली दानव का संग्राम होने लगा । चामर नामक असुर दानवों की चतुरंगिणी
 सेना को साथ लेकर युद्ध में भिड़ गया । साठ हजार रथियों को आपने साथ लेकर उदग्र महाबली दानव
 भी युद्ध में आ पहुँचा ॥४१॥ एक करोड़ सेना लेकर महाहनु नामक असुर ने युद्ध में भाग लिया ।
 असिलोमा नामक महादानव पाँच सौ रथियों के साथ युद्धस्थल में आ पहुँचा (उसके शरीर के रोंगटे
 तलवार की धार के सदृश तीखे और पैने थे) ॥४२॥ उस रणभूमि में बाष्कल नामक दैत्य अपने साथ
 साठ लाख सेना लेकर लड़ने लगा । परिवारित नामक असुर हाथी सवार, घुड़सवार आदि की टोलियों
 के साथ एक करोड़ की विशाल सेना के साथ युद्धभूमि में उतर आया । बिडाल नामक दैत्य पाँच अरब
 रथियों के साथ लड़ने लगा ॥४३-४४॥ इनके अतिरिक्त और भी सहस्रों महादैत्य रथ, हाथी और
 घुड़सवारों की सेना की सहायता से युद्ध करने में लग गये । उस रणस्थल में कोटि-कोटि सहस्र रथ,
 हाथी और घोड़ों की सेना से घिरा हुआ स्वयं महिषासुर उपस्थित था । वे अगणित दानव देवी के साथ

हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः । तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥
 युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशु-पट्टिशैः । केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥४८॥
 देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः । सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥४९॥
 लीलैवैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी । अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥५०॥
 मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी । सोऽपि क्रुद्धो धृतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥५१॥
 चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः । निःश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥५२॥

तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग, परशु और पट्टिश नामक अस्त्र-शस्त्र का प्रहार करते हुए युद्ध में लगे थे । कुछेक दैत्यों ने मिलकर देवी पर शक्ति का प्रहार किया, कुछेक ने अपने पाश फेंके ॥४५-४८॥ कुछ अन्य दैत्यों ने देवी के वध के उद्देश्य से उन पर खड्ग का प्रहार किया । देवी ने क्रुद्ध होकर लीला-स्वरूप अपने अस्त्र-शस्त्रों की भीषण वर्षा से उन दानवों के निक्षिप्त अस्त्रों को सहज में ही काट दिया । उनके मुख-कमल पर परिश्रम या क्लान्ति का लेशमात्र भी चिह्न नहीं दिखाई पड़ता था । देवताओं और ऋषि उनका स्तुति-गान कर रहे थे तथा वह महामाया परमेश्वरी उन दैत्यों पर अपने अस्त्र-शस्त्रों की बौछार कर रही थीं ॥४९-५०॥ देवी का वाहन सिंह भी क्रुद्ध होकर अपने अयालों (गर्दन के केशों) को हिलाता हुआ दैत्यों की सेना में इस प्रकार भ्रमण करने लगा मानो किसी वन में दावाग्नि फैलकर क्रमशः बढ़ रही हो । देवी ने रणस्थल में युद्ध करते हुए दानवों के साथ जितने

त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः । युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासि- पट्टिशैः ॥५३॥
 नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः । अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खान्स्तथापरे ॥५४॥
 मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे । ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥
 खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् । पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥
 असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् । केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥
 विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते । वेमुश्च केचिद् रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥

श्वाँस छोड़े, वे सभी सैकड़ों-हजारों गणों के रूप में परिणत हो गये और हाथ में परशु, भिन्दिपाल,
 खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रों द्वारा दानवों से युद्ध करने में लग गये ॥५१-५३॥ देवी की शक्ति
 से वर्धित गण लोग असुरों का संहार करते हुए नगाड़े, शंख आदि बाजे बजाने लगे ॥५४॥ उस
 समरांगण में कितने ही गण मृदंग आदि बाजे बजा रहे थे । इसके पश्चात् देवी ने त्रिशूल, गदा, तलवार
 चलाकर तथा शक्ति की वर्षा करके सैकड़ों असुरों का विनाश कर दिया । कितने ही राक्षसों को घण्टे
 की भयंकर आवाज से अचेत करके वध कर दिया ॥५५-५६॥ अनेकों दैत्यों को देवी ने अपने पाश
 में बाँधकर भूमि पर घसीटा और कितने ही दानव उनकी पैनी तलवार के प्रहार से दो-दो टुकड़ों में
 विभक्त हो गये ॥५७॥ कितने ही राक्षस उनकी गदा के आघात से आहत होकर धराशायी हो गये,
 कितने ही मुसल की चोट खाकर आहतावस्था में मुँह से खून उगलने लगे ॥५८॥

केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि । निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥
 श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुक्षुस्त्रिदशार्दनाः । केषाञ्चिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥
 शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः । विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्या महासुराः ॥६१॥
 एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद् देव्या द्विधा कृताः । छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुररुत्थिताः ॥६२॥
 कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः । ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥
 कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्ग-शक्त्यृष्टि-पाणयः । तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥

शूल के प्रहार से वक्षःस्थल फट जाने के कारण कितने ही दैत्य भूमि पर गिर गये । देवी की बाणवृष्टि से कितने ही दैत्यों का कटिप्रदेश भंग हो गया ॥५९॥ बाज पक्षी की तरह वेग से झपटने वाले दानव अपने प्राणों का त्याग करने लगे । कितने ही राक्षसों की भुजाएँ आघात से छिन्न-भिन्न हो गयीं, कितनों की गरदनें कट गयीं ॥६०॥ कितनों के मस्तक खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिरने लगे । कुछ दैत्यों के शरीर बीच के भाग से ही विदीर्ण हो गये । कितने राक्षस जाँघहीन हो जाने से धरती पर गिर गये ॥६१॥ देवी ने कितने ही दैत्यों के एक बाँह, एक पैर तथा एकाक्ष करके दो टुकड़ों में विदीर्ण करके उनका संहार कर डाला । कितने ही योद्धा राक्षस देवी के द्वारा छिन्न-मस्तक होकर भी पुनः संभलकर उठते थे ॥६२॥ और केवल धड़ के सहारे ही अच्छे-अच्छे अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में लेकर युद्ध करने में तत्पर हो जाते । कटे हुए कबन्ध युद्ध के बाजों के स्वर पर नाचने लगते थे ॥६३॥ कटे हुए कितने ही धड़ हाथों में खड्ग, शक्ति और ऋष्टि नामक हथियार लिये दौड़ते थे और कितने ही अन्य दैत्य 'ठहरो ! ठहरो !' कहकर देवी को युद्ध के लिए प्रेरित करते थे ॥६४॥

पातितै रथनागाश्चैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साभवत्तत्र घनाभूत्स महारणः ॥६५॥
 शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुप्तुवुः । मध्ये चासुरसैन्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥
 क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥
 स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः । शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६८॥
 देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः । यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥३ॐ॥ ॥६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

उवाच १, श्लोकाः ६८, एवम् ६९, एवमादितः ॥१७३॥

जिस भूमि पर वह घनघोर युद्ध हुआ था, वहाँ की जमीन देवी द्वारा निक्षिप्त रथ, हाथी, घोड़े और दानवों की लाशों से ऐसी आच्छन्न हो गयी थी कि वहाँ पर किसी का गमनागमन सम्भव नहीं था ॥६५॥
 दानवदल में हाथी, घोड़े और मृतक असुरों के शरीर से इतना रक्तप्रवाह हुआ था कि वहाँ कुछ ही क्षणों में खून की बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवाहित होने लगीं ॥६६॥ जिस प्रकार तृण-समूह और काष्ठ की विशाल राशि को अग्नि कुछ ही क्षणों में भस्म कर देती है, उसी प्रकार जगज्जननी जगदम्बा ने असुरों के उस विशाल सैन्यसमूह को क्षणभर में नष्ट कर डाला ॥६७॥ देवी का सिंह भी अपने गरदन के बालों को हिला-हिलाकर घोर गर्जन कर रहा था । कितने ही दैत्यों की उस गुरु-गर्जन से ही मानो प्राण-पखेरू निकले जा रहे थे ॥६८॥ देवी के गणों ने भी उन दानवों के साथ ऐसा भीषण युद्ध किया, जिससे आकाश में दर्शक बने देवतागण भी बहुत ही प्रसन्न हुए और उन पर आकाशमार्ग से सुमन की वृष्टि करने लगे ॥६९॥
 इस प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्रीकृत 'शिवदत्ती' हिन्दी-व्याख्या में मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित महिषासुर की सेना का वध नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः (३)

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानु-सहस्रकान्तिमरुण-क्षौमां शिरोमालिकां रक्तलिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्र-विलसद् वक्त्रारविन्दश्रियं देवीं बद्ध-हिमांशु-रत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः। सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद् ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२॥

स देवीं शरवर्षेण वर्ष वर्ष समरेऽसुरः। यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥

तस्य च्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्। जघान तुरगान् बाणर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥४॥

ध्यान—जगदम्बिका के श्री-अंगों की शोभा सहस्रों उदित होते हुए सूर्यों के तुल्य है। उनकी रक्तवर्ण की साड़ी के साथ गले में मुण्डमाला सुशोभित हो रहा है। दोनों स्तन उनके रक्त चन्दनार्चित हैं। उनके कर-कमलों में जपमाला, विद्या, अभय तथा वर नामक- ये चार मुद्रायें शोभा पा रही हैं। उनके मुखकमल त्रिनेत्रों से युक्त होकर शोभायमान हो रहे हैं। मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट के साथ ही चन्द्रमा भी विराजमान हैं। वे स्वयं कमलासन पर आसीन हैं। ऐसी देवी को मैं भक्तियुक्तचित्त से नमस्कार करता हूँ।

ऋषि ने कहा— ॥१॥ इस प्रकार दानवी सेना का संहार होते हुए देखकर सेनापति चिक्षुर क्रोधित होकर अम्बिका देवी से युद्ध करने के लिए उनके सम्मुख आया ॥२॥ सुमेरु पर्वत के शिखर पर होने वाली मेघों की वर्षा की भाँति वह दानव देवी पर अपने बाणों की वर्षा करने लगा ॥३॥ तत्पश्चात् देवी ने अपने बाणों से उसके बाणसमूहों का अनायास ही नष्ट करके उसके सारथि और रथ के घोड़ों को मार डाला ॥४॥

● चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् । विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥५॥
 ● सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥६॥
 ● सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि । आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥७॥
 दुर्गा
 र्गा
 स
 प्त
 स
 ती
 ● तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन । ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥८॥
 चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः । जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥९॥
 दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत । तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुराः ॥१०॥
 ● हते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥११॥

इसके साथ ही उसके धनुष तथा ध्वजा को भी काटकर फेंक दिया। धनुष के कट जाने पर उसके समस्त अंगों को अपने बाणों से छेद डाला ॥५॥ अपने धनुष, रथ, घोड़े और सारथि के नष्ट हो जाने से वह दानव अपने तलवार और ढाल को लेकर देवी की ओर झपटा ॥६॥ उसने तेज धारवाली तलवार से सिंह के मस्तक पर आघात करके देवी की बाँयों भुजा में अत्यन्त वेग से प्रहार किया ॥७॥ राजन् ! देवी की बाँह के स्पर्श से वह तलवार भग्न हो गयी। अपना प्रहार निष्फल होते देखकर उस राक्षस ने क्रोध से रक्त नेत्र करके हाथों में शूल उठाया ॥८॥ तब उस महादानव ने देवी भद्रकाली के ऊपर अपना शूल चलाया। वह आकाशमण्डल से गिरते हुए सूर्यमण्डल के समान अपने तेज से देदीप्यमान हो गया ॥९॥ बड़े वेग से उस शूल को अपनी ओर आते देखकर प्रत्युत्तर में देवी ने भी अपना शूल चलाया। देवी के शूल के प्रहार से दानव-शूल के सैकड़ों खण्ड हो गये, साथ ही उस शूल के द्वारा महाबली सेनापति चिक्षुर का प्राणान्त हो गया ॥१०॥ महिषासुर के महावीर सेनानायक चिक्षुर के वधोपरान्त देवताओं का पीड़क चामर नामक राक्षस हाथी पर सवार होकर लड़ने के लिए आया ॥११॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकाद्रुतम्। हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२॥
 भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः। चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिन्त् ॥१३॥
 ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः। बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥
 युद्धयमानौ ततस्तौ तु तस्मान् नागान् महीं गतौ। युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥
 ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा। करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम् ॥१६॥
 उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः। दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥
 देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्। वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥१८॥

उसने आते ही देवी पर शक्ति का आघात किया, परन्तु जगदम्बिका ने उसे केवल हुंकार मात्र से ही घायल एवं निष्प्रभ करके तत्क्षण भूमि पर सुला दिया ॥१२॥ अपनी खण्डित शक्ति को देखकर चामर परम कुपित हुआ। क्रोध में भरकर उसने शूल का वार किया, किन्तु देवी ने उस शूल को अपने बाणों द्वारा काट गिराया ॥१३॥ इतने में अवसर पाकर देवी का सिंह हाथी के मस्तक पर उछल पड़ा और दानव के साथ बाहु-युद्ध करने को उद्यत हुआ ॥१४॥ वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथी से भूमि पर उतर आये और अत्यन्त क्रोधित होकर परस्पर प्रचण्ड प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥१५॥ तत्पश्चात् देवी का सिंह आकाश की ओर प्रबल वेग से उछल पड़ा और गिरते समय अपने पैने पंजों के प्रहार से चामर का सिर धड़ से भिन्न कर दिया ॥१६॥ इसी प्रकार उदग्र दैत्य पत्थरों और वृक्षों की चोट खाकर रणस्थल में देवी के हाथों मारा गया और कराल राक्षस भी दाँतों, घूँसों एवं थप्पड़ों की मार से भूमि पर गिर पड़ा ॥१७॥ गदा के प्रहार से देवी ने उद्धत नामक राक्षस को चकनाचूर कर दिया। भिन्दिपाल से वाष्कल एवं बाणों से ताम्र तथा अन्धक को यमराज के घर भेज दिया ॥१८॥

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१९॥
 बिडालस्यासिना कायात् पातयामास वैशिरः । दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२०॥
 एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥२१॥
 कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् । लाङ्गलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥२२॥
 वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च । निःश्वास-पवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२३॥
 निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः । सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥२४॥
 सोऽपि कोपान् महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः । शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५॥

त्रिनयना परमेश्वरी ने अपने त्रिशूल से उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दानव को मार
 गिराया ॥१९॥ बिडाल दैत्य के मस्तक को तलवार के आघात से मुण्डहीन कर दिया । दुर्धर और
 दुर्मुख नामक दोनों राक्षसों को अपने बाणों से बाँधकर यमालय में भेज दिया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी
 सेना का क्षय होते देखकर महिषासुर ने भैसे का रूप बनाकर देवी के गणों को त्रस्त करना प्रारम्भ
 किया ॥२१॥ वह राक्षस किसी-किसी को शूथुन से मारकर, किसी-किसी पर खुरों के प्रहार से, किसी-
 किसी को पूँछ की चोट से और कुछ को अपने सींगों से विदीर्ण कर दिया ॥२२॥ कुछ गणों को प्रबल
 वेग से, किसी को सिंहनाद के द्वारा, किसी को घुमाकर और कितने को ही अपने निःश्वास वायु के
 झोंके से भूमि पर गिरा दिया ॥२३॥ इस प्रकार गणों की सेना को तितर-बितर करके वह राक्षस
 भगवती के सिंह को मारने के लिए वेग से झपट पड़ा । इससे महामाया को अतीव क्रोध उत्पन्न
 हुआ ॥२४॥ उधर महाबलशाली महिषासुर भी क्रुद्ध होकर भूमि को अपने खुरों से खोदने लगा और
 अपने सींगों से उठा-उठाकर बड़े-बड़े पर्वतों को फेंककर गर्जन करने लगा ॥२५॥

● वेगभ्रमणविक्षुण्णा महीं तस्य व्यशीर्यत । लाङ्गुलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६॥
● धुतशृङ्ग-विभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्धनाः । श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७॥
● इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् । दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदा करोत् ॥२८॥
● सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९॥
● ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत् तस्याम्बिका शिरः छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिर्दृश्यत ॥३०॥
● तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः । तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥३१॥

● उसके वेग से घुमाने के कारण पृथ्वी अत्यन्त क्षुभित होकर फटने-सी लगी । उसकी पूँछ से
● टकराकर सागर पृथ्वी को जुलमग्न करने लगा ॥२६॥ हिलते हुए सींगों के प्रहार से बादलों के समूह
● छिन्न-भिन्न हो गये । उसके श्वास की प्रबल वायु के कारण उड़ते हुए सैकड़ों पर्वत आकाश से भूमि
● पर गिरने लगे ॥२७॥ उस महादानव को क्रोध की मुद्रा में अपनी ओर लक्ष्य देखकर चण्डिका देवी
● ने भी उसको मारने के लिए उस पर महान क्रोध प्रकट किया ॥२८॥ सर्वप्रथम देवी ने अपने पाश
● फेंककर उस महाबली असुर को बाँध लिया । अपने को उस महा रणस्थल में बँध जाने पर उस
● राक्षसराज ने भी अपने बनावटी महिष स्वरूप का परित्याग कर दिया ॥२९॥ तुरन्त ही वह दैत्य
● मायावी सिंह के रूप में देवी के सामने आ गया । ऐसी स्थिति में जैसे ही अम्बिका ने उसका शिरच्छेदन
● करना चाहा, त्योंही वह राक्षस खड्गधारी पुरुष भेष में दिखाई पड़ने लगा ॥३०॥ देवी ने तत्काल ही
● बाणवृष्टि करके ढाल और तलवार के सहित उस महिषासुर को बेध दिया । तब वह मायावी राक्षस
● गजराज के रूप में परिवर्तित हो गया ॥३१॥

करेण च महासिंहं तं चकषे जगज्ज च । कषतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२॥
 ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३॥
 ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् । पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३४॥
 ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः । विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥३५॥
 सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः । उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥

देव्युवाच ॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत् पिबाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥३८॥

गजराज के वेश में वह राक्षस अपनी सूँड़ से देवी के विशाल सिंह को खींचने और गरजने लगा ।
 खींचने का प्रयास करते ही देवी ने अपनी तलवार से उसकी सूँड़ काट ली ॥३२॥ तदनन्तर उस
 महादानव ने पुनः अपने पहले वाले भैंसे के रूप को ग्रहण कर लिया और पहले की तरह चराचर
 प्राणियों सहित त्रैलोक्य को आतंकित करने लगा ॥३३॥ तत्पश्चात् जगज्जननी चण्डिका भवानी
 बारम्बार उत्तम मधुपान करते हुए आँखें लाल करके हँसने लगी ॥३४॥ वह राक्षस बल और पराक्रम
 के मद में उन्मत्त की भाँति घोर गर्जन करने लगा और अपने सींगों पर उठा-उठाकर पर्वतों को देवी
 पर निक्षेप करने लगा ॥३५॥ उस समय उसके चलाये हुए पर्वतों को देवी अपने बाणों से विचूर्ण करते
 हुए बोलीं । मधु के मद से बोलते समय उनका मुख लाल हो रहा था और जिह्वा लड़खड़ा रही
 थी ॥३६॥ देवी बोलीं-॥३७॥ ओ मूढ़ ! मैं जब तक मधुपान करती हूँ, तब तक तू खूब मनमानी
 गरज ले । मेरे हाथ से यहीं तेरी मृत्यु होने पर अब शीघ्र ही देवगण भी गरजन करेंगे ॥३८॥

ऋषिरुवाच ॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्। पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलैर्नैनमताडयत् ॥४०॥
 ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तथा निजमुखात्ततः। अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥
 अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः। तथा महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥
 ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्। प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥
 तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ॐ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४, एवमादितः ॥२१७॥

ऋषि ने कहा-॥३९॥ ऐसा कहकर देवी उछलकर उस दैत्य पर चढ़ बैठीं। अपने पैरों से उसे दबोच कर देवी ने शूल से उसके कण्ठस्थल में प्रहार किया ॥४०॥ दबाव के शिकंजे में जकड़ा होने पर भी महिषासुर अपने मुख से (दूसरे रूप में बाहर होने लगा)। अभी वह शरीर के अर्धभाग से ही बाहर निकल सका था कि देवी ने अपने बल से उसे रोक दिया ॥४१॥ वह दैत्य अर्ध निर्गतावस्था में ही देवी के साथ युद्ध में लग गया। तब देवी ने बहुत बड़ी तलवार से उसके मस्तक का छेदन कर दिया ॥४२॥ महिषासुर के मरते ही उसकी बची-खुची सेना हाहाकार करती हुई भाग खड़ी हुई तथा समस्त देव अत्यन्त आनन्दित हुए ॥४३॥ देवताओं ने दिव्य महर्षियों के साथ मिलकर भगवती दुर्गा की स्तुति की। गन्धर्वराज प्रमुदित होकर गान करने लगे तथा अप्सराएँ भी नाचने लगीं ॥४४॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

महिषासुर वध नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः (४)

ध्यानम्

ॐ कालाग्रामां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्धहन्तीं त्रिनेत्राम्।
 सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

ऋषिरुवाच ॥१॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
 तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्ष-पुलकोद्गम-चारुदेहाः ॥२॥
 देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेष-देवगण-शक्तिसमूह-मूर्त्या ।

ध्यान- जिन देवी को देवगण चारों ओर से आवृत रखते हैं और सिद्धिलाभ की आकांक्षा वाले मनुष्य जिनकी सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवी की आराधना करना उचित है। उनके अंगों का वर्ण काले मेघों के समान श्याम रंग का है। उनके कटाक्षमात्र से ही शत्रुसमूह भयाकुल हो उठता है, उनके मस्तक पर चन्द्रमा की रेखा बद्ध होकर शोभायमान होती है। उनके हाथों में शंख, चक्र, तलवार, त्रिशूल आदि शोभित हैं। वे तीन नेत्रों वाली देवी अपने वाहन सिंह के कन्धों पर सवार होकर अपने प्रभाव से त्रैलोक्य को पूर्ण कर रही हैं।

ऋषि ने कहा-॥१॥ अत्यन्त बलशाली पापात्मा दैत्य महिषासुर तथा उसकी दानवी सेना का देवी के हाथ से संहार हो जाने पर इन्द्रादि देवता नतमस्तक होकर भगवती दुर्गादेवी की स्तुति करने लगे। ऐसे समय में उनके सुन्दर अंगों में प्रफुल्लता के कारण रोमांच हो रहा था ॥२॥

देवताओं ने कहा- आपका स्वरूप ही सब देवों की शक्तिसमूह है, आपने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण

नाम्बिकामखिल-देव-महर्षि-पूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३॥
 यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
 सा चण्डिकाखिल-जगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥४॥
 या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
 श्रद्धासतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥५॥
 किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत् किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
 किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥

विश्व को व्याप्त कर रखा है, आप समस्त देवों तथा महर्षियों के द्वारा परमपूज्य हैं। हे जगदम्बा ! हम आपको भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं। आप हम लोगों का कल्याण करें ॥३॥ जिन देवी के अतुलनीय प्रभाव और शौर्य का वर्णन करने में भगवान् शेषनाग, ब्रह्मा और शिवजी भी असमर्थ हैं, वे ही भगवती चण्डिका समस्त विश्व का पालन तथा अशुभकारी भय के नाश का विचार करें ॥४॥ जो धर्मात्माओं के गृह में लक्ष्मी रूप से, दुरात्माओं के यहाँ निर्धनता रूप से, विशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में बुद्धि रूप से, सज्जनों में श्रद्धारूप से तथा कुलीन मनुष्यों में लज्जा के रूप से विराजमान रहती हैं, उन महामाया भगवती दुर्गा को हम सब प्रणाम करते हैं। हे देवि ! आप समस्त विश्व का पालन करिए ॥५॥ हे देवि ! हम आपके इस अचिन्तनीय रूप का असुरों के संहारक शौर्य तथा सम्पूर्ण देव-दानवों के सम्मुख उत्पन्न किये हुए अद्भुत चरित्र का वर्णन नहीं कर सकते ॥६॥

च
 तु
 र्थो
 ५
 ध्या
 यः

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोष-न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
 सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत - मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७॥
 यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
 स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु- रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥८॥
 या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व- मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
 मोक्षार्थिर्मुनिभिरस्त - समस्त-दोषै- विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥९॥
 शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान- मुद्गीथरम्य-पदपाठवतां च साम्नाम् ।
 देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥
 आप ही विश्व की उत्पत्ति में कारणस्वरूप हैं, आप में तीनों गुण (सत्त्व, रज और तम) विद्यमान
 हैं, फिर भी दोषों के साथ आपका सम्पर्क नहीं होता । भगवान् विष्णु तथा शिवजी भी आपकी महिमा
 को नहीं जान सकते । यह चराचर विश्व आपका अंश है, आप ही सब जीवों के लिए आश्रयभूत हैं,
 क्योंकि एकमात्र आप ही सब की मूलभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं ॥७॥ हे देवि ! जिसके उच्चारण
 से सभी यज्ञों में देवताओं की तुष्टि होती है, वह 'स्वाहा' आप ही हैं । इसके अतिरिक्त आप पितरों
 को भी तृप्ति प्रदान करती हैं । इस कारण सभी लोग आपको 'स्वधा' के नाम से सम्बोधित करते
 हैं ॥८॥ हे देवि ! आप ही परा विद्या हैं, जिससे मोक्ष की प्राप्ति, अचिन्त्य महाव्रत स्वरूपता, समस्त
 दोषों से हीनता, जितेन्द्रियता, तत्त्व की सारता होती है और सभी मुनिजन जिसके लिए निरन्तर
 अभ्यासशील रहा करते हैं ॥९॥ आप शब्दस्वरूपा, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथ
 (छन्द के रूप में गाया जाने वाला एक प्रकार का वेद मन्त्र) के मनोरम पद्य के पाठ से युक्त सामवेद

च
 तु
 यो
 5
 ध्या
 यः

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
 श्रीः कैटभारि-हृदयैक-कृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥
 दुर्गासि ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-बिम्बानुकारि कनकोत्तम-कान्ति-कान्तम् ।
 अत्यद्भूतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२॥
 पतदृष्ट्वा तु देवि कुपितं भृकुटी-कराल-मुद्यच्छशाङ्क-सदृश-च्छवि यत्र सद्यः ।
 प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदशनि ॥१३॥

की आधार हैं। आप ही देवी, तीनों वेद और छहों ऐश्वर्य से सम्पन्न भगवती हैं। विश्व की उत्पत्ति एवं पालन के निमित्त आप की वार्ता (कृषि एवं जीविका) के रूप में प्रादुर्भूत हुई हैं। आप जगत् की महान पीड़ा की नाशकर्त्री हैं ॥१०॥ हे देवि ! सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आप मेधा शक्ति हैं, दुस्तर संसार-सागर से तारने वाली नौकास्वरूपिणी दुर्गादेवी आप ही हैं। आपकी किसी पदार्थ में आसक्ति नहीं है। आप ही कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्ष में निवास करने वाली लक्ष्मी तथा शिव द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी हैं ॥११॥ आपका मुखकमल मृदु हास्य से युक्त, निर्मल, पूर्णचन्द्रबिम्ब के समान और उत्तम स्वर्ग की सुन्दर आभा से भासित हैं, फिर भी आपके इस अनुपम लावण्य को देखकर महिषासुर ने कुपित होकर आप पर आघात कर दिया, यह बात आश्चर्य में डाल देने वाली है ॥१२॥ हे देवि ! वही मुख जब क्रोध की मुद्रा में उदयकालीन चन्द्रमा के समान अरुण तथा चक्र भौहों के कारण भयंकर हो उठा, तब उस रूप को देखकर महिषासुर का सहसा प्राणान्त नहीं हुआ, यह और भी अधिक आश्चर्य की बात है, क्योंकि क्रुद्ध यमराज के सामने कौन प्राणी जीवन धारण करने में समर्थ हो सकता है ॥१३॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कापिवती कुलानि ।
 विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-त्रीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४॥
 ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
 धन्यास्त एव निभृतात्मज-भृत्य-दारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५॥
 धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृतिं करोति ।
 स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती प्रसादात् लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६॥
 दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
 दारिद्र्य-दुःख-भय-हारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचिता ॥१७॥

हे परमात्मस्वरूपा देवि ! आप प्रसन्न हो, आपके प्रसन्न होने पर विश्व का उत्थान होता है और
 कुपित होने पर कितने ही वंशों का नाश हो जाता है, यह बात अनुभव द्वारा ही प्रत्यक्ष प्रमाणित हुई
 है । आपके क्रोधाग्नि में महिषासुर की विशाल वाहिनी (सेना) भी क्षणमात्र में भस्म हो उठी है ॥१४॥
 आप सदैव अभ्युदयकर्त्री हैं, आप जिन लोगों पर कृपादृष्टि रखती हैं, वे ही लोग देश में सम्मान, धन
 और ख्याति प्राप्त करते हैं । उन लोगों का धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने स्त्री, पुत्र
 और भृत्यों के साथ रहकर धन्य होते हैं ॥१५॥ हे देवि ! आपकी ही कृपाकटाक्ष से धर्मात्मा व्यक्ति
 श्रद्धापूर्वक सदैव धर्माचरण में निरत रहता है और उसके प्रभाव से स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।
 अतएव आप निश्चय ही त्रैलोक्य की मनोवाछित फल प्रदान करती हैं ॥१६॥ हे माँ दुर्गे ! आप
 स्मरणमात्र से ही सब जीवों का भय निवारण करती हैं और स्वस्थ मनुष्यों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें

अभिर्हतेर्जगत्तुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
 संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥
 दुर्दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
 र्गो लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वापि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥
 सप्त खड्ग-प्रभा - निकर - विस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्र-कान्ति-निवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
 ती यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

परम कल्याणकारी बुद्धि देती हैं। दुःख-दरिद्र और भयहारी देवि ! आपका चित्त परोपकार के निमित्त
 सदैव द्रवित रहता है, ऐसा दूसरा कौन है ? ॥१७॥ हे देवि ! जो राक्षस अनन्त काल तक नरक भोग
 करने के लिए पापाचार करते रहे, उन्हें युद्ध में वध करके स्वर्ग भेजने तथा संसार को सुखी करने के
 उद्देश्य से ही आप उनका वध करती हैं ॥१८॥ आप अपने शत्रुओं पर शस्त्रों का आघात क्यों करती
 हैं ? आप केवल अपने दृष्टिपात से ही सम्पूर्ण दैत्य-समूहों को भस्म कर सकती हैं, तो भी आप ऐसा
 न करके युद्धस्थल में उनका संहार करती हैं। इस बात में भी कुछ रहस्य जान पड़ता है। वह यह
 है कि मेरे शस्त्रों के प्रहार से पवित्र होकर ये सब स्वर्गपुरी में जायें, इस प्रकार उनके प्रति भी आपके
 उत्तम विचार होते हैं ॥१९॥ खड्ग के तेजोराशि की भयंकर दीप्ति तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग
 की घनीभूत कान्ति से चकाचौंध होने पर भी असुरों की आंखें नष्ट नहीं हुई, क्योंकि वे सब मनोरम
 किरणों से युक्त आनन्द प्रदान करने वाले आपके मुखचन्द्र का दर्शन कर रहे थे ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
 वीर्यं च हन्तुं हतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्यम् ॥२१॥
 केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
 चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्ट्वा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥
 त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
 नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥
 शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
 घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥

हे देवि ! आपका शील दुरात्माओं के दुर्व्यवहार का निवारक है । आपका रूप अचिन्तनीय तथा
 अतुलनीय है, आपका पराक्रम देवताओं के विजेता दैत्यों का नाशक है । इस प्रकार आपने अपने
 शत्रुओं पर सदैव दया ही दर्शायी है ॥२१॥ हे वरदात्री देवि ! आपके इस शौर्य की तुलना कहीं भी
 नहीं हो सकती, शत्रुओं को त्रस्त करने वाला एवं अत्यन्त मनोहारी रूप अन्यत्र कहाँ दिखाई पड़
 सकता है । हृदय में दयालुता और युद्ध में निर्दयता-ये दोनों बातें एक साथ होने का भाव केवल
 त्रैलोक्य में आपके सिवा और किसी में नहीं है ॥२२॥ हे अम्बे ! आपने शत्रुओं का वध करके
 उन्हें अमरपद दिलाया है, उनसे प्राप्त होने वाले भय को हम लोगों से दूर किया है, हमारा आपको
 नमस्कार है ॥२३॥ हे देवि ! आप शूल के द्वारा हमारा रक्षण करें । हे अम्बिके ! आप अपने
 खड्ग, घण्टा, ध्वनि और धनुष की टंकार से हमारी रक्षा कीजिए ॥२४॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
 भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥
 सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते । यानि चात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६॥
 खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥
 ऋषिरुवाच ॥२८॥
 एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
 भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता । प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

हे चण्डिके ! आप हमारी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर में अपने त्रिशूल को घुमाकर हमारा
 परित्राण करें ॥२५॥ आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भीषण रूप त्रिभुवन में विचरण करते हैं,
 उसके द्वारा आप हमारी तथा भूतल की रक्षा करें ॥२६॥ हे अम्बिके ! आपके कर-कमलों में
 सुशोभित होने वाले खड्ग, शूल, गदा आदि जो भी अस्त्र-शस्त्र हों, उन सभी द्वारा आप हम लोगों
 का रक्षण करें ॥२७॥

ऋषि ने कहा-॥२८॥ इस प्रकार सब देवों ने उन जगन्माता का मिलकर स्तवन तथा
 नन्दनकानन (इन्द्रदेव के बगीचे का नाम) के दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दनादि के द्वारा पूजन
 किया ॥२९॥ तदनन्तर दिव्य धूपों का सुगन्ध अर्पित किया । तब देवी ने करबद्ध होकर प्रणाम
 करते हुए उन देवताओं से कहा ॥३०॥

देव्युवाच ॥३१॥

त्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवान्छितम् ॥३२॥

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ॥३४॥

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः । यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥३५॥

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः । यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥

तस्य वित्तर्द्धिविभवेर्धन-दारादि-सम्पदाम् । वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

देवी ने कहा-॥३१॥ हे देवगण ! तुम सब लोग मुझसे अपना अभीष्ट पदार्थ मांग लो ॥३२॥ तब

देवताओं ने कहा-॥३३॥ भगवती की कृपा से हम लोगों की सभी आकांक्षाएं पूर्ण हो गयी हैं, अब

कुछ भी इच्छित वस्तु माँगने के लिए नहीं है ॥३४॥

हे महेश्वरि ! हम लोगों का यह परम शत्रु महिषासुर मारा गया है, इतने पर भी आप यदि हम लोगों

को कुछ देना ही चाहती हैं ॥३५॥ तो हम लोगों की यही इच्छा पूरी कीजिए कि जब कभी भी हम आपका

स्मरण करें तब आप दर्शन देकर हम लोगों को संकट से मुक्त करें ।

हे प्रसन्नवदना अम्बिके ! जो भी व्यक्ति इन स्तोत्रों के द्वारा आपकी आराधना करे उसे धन-धान्यादि

तथा स्त्री-पुत्रादि से सम्पन्न करें तथा सदैव हम लोगों पर आप प्रसन्न रहें ॥३६-३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥

इत्येतत् कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥

पुनश्च गौरीदेहात् सा समुद्भूता यथाभवत् । वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भ-निशुम्भयोः ॥४१॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी । तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत् कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

उवाच १, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५, एवम् ४२, एवमादितः ॥२५९॥

ऋषि बोले-॥३८॥ हे राजन् ! देवी ने अपने तथा विश्व के कल्याणार्थ जब भद्रकाली देवी को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया, तब वे 'तथाऽस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वहीं अन्तर्निहित हो गयीं ॥३९॥

हे राजन् ! पूर्वकाल में त्रैलोक्य की हिताकांक्षिणी देवी जिस प्रकार देवों के शरीर से प्रादुर्भूत हुई थीं, वह सब कथा मैंने तुम्हें सुना दी ॥४०॥ इसके पश्चात् देवों की हितकारिणी देवी दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ और निशुम्भ नामक राक्षसों के संहार के लिए जिस प्रकार गौरी देवी के अंगों से अवतरित हुई थीं, उसका वर्णन मैं तुमसे सुनाता हूँ ॥४१-४२॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

इन्द्रादि-स्तुति नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः (५)

विनियोगः

ॐ. अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, प्राग्गरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थं उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ घण्टा-शूल-हलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्तजैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-पूर्वामित्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यादिनीम् ॥

‘ॐ क्लीं’ ऋषिरुवाच ॥१॥

पुरा शुम्भ-निशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हता मदबलाश्रयात् ॥२॥

विनियोग- इस उत्तर चरित्र के ऋषि रुद्र, देवता महासरस्वती, अनुष्टुप् छन्द, भीमा शक्ति, प्राग्गरी बीज, सूर्य तत्त्व तथा सामवेद स्वरूप है । महासरस्वती की प्रसन्नता के लिए उत्तर चरित्र के पाठ में इसके विनियोग का विधान है ।

ध्यान- जिनके कर-कमलों में घण्टा, शूल, हल, शंख, मूसल, चक्र और धनुष-बाण है, जिनके शरीर की दीप्ति शारदीय चन्द्र के समान सुन्दर है, जो त्रैलोक्य की आधारभूता और शुम्भ-निशुम्भ आदि दैत्यों का संहार करने वाली हैं, उन गौरी देवी के शरीर से उत्पन्न महासरस्वती देवी का मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ ।

ऋषि ने कहा-॥१॥ प्राचीन काल में शुम्भ और निशुम्भ नामक दानवों ने अपने बल के मद में चूर होकर इन्द्र के हाथ से त्रैलोक्य का राज्य एवं यज्ञ भाग छीनकर अधिकृत कर लिया ॥२॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्। कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥३॥
 तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च। ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥४॥
 हताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः। महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५॥
 तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः। भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥६॥
 इति कृत्वा मर्तिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्। जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७॥
 देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥९॥
 रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥१०॥

वे ही दोनों राक्षस सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम, वरुण आदि देवों के अधिकार भी भोगने लगे ॥३॥
 वायु और अग्नि का कार्य भी वे दोनों ही करने लगे। उन दोनों दानवों ने सभी देवों को पराजित,
 अपमानित तथा राज्य-च्युत करके उन्हें स्वर्ग से बाहर खदेड़ दिया। उन दोनों बलशाली असुरों से
 अपमानित होकर देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया ॥४-५॥ उन लोगों ने सोचा कि
 जगदम्बा ने हम लोगों को प्रसन्न होकर वर-प्रदान किया था कि संकटापन्न स्थिति में तुम्हारे स्मरण से
 मैं तुम्हें संकटमुक्त कर दूँगी ॥६॥ ऐसा निश्चय करके देवता लोग गिरिराज हिमाचल पर्वत पर जाकर
 भगवती विष्णुमाया की स्तुति करने लगे ॥७॥ देवताओं ने कहा-॥८॥ देवी को नमस्कार है, महादेवी
 शिवा को मेरा सदैव नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्रा को प्रणाम है। नियम-पूर्वक जगदम्बा को हम लोग
 प्रणाम करते हैं ॥९॥ रौद्रा, नित्या, गौरी एवं धात्री को बारम्बार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी,
 चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपिणी देवी को सदैव नमस्कार है ॥१०॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूमृतौ लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥११॥
 दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥
 अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥
 या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै ॥ १४ ॥ नमस्तस्यै ॥ १५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
 या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै ॥ १७ ॥ नमस्तस्यै ॥ १८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
 या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २० ॥ नमस्तस्यै ॥ २१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
 या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २३ ॥ नमस्तस्यै ॥ २४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

शरण में आगतों की कल्याणकारिणी, वृद्धि एवं सिद्धिरूपिणी देवी को हमारा बारम्बार प्रणाम है ।
 नैर्ऋति (राक्षसों की लक्ष्मी), राजाओं की लक्ष्मी तथा शर्वाणी-स्वरूपा जगज्जननी को हम प्रणाम करते
 हैं ॥११॥ दुर्गा, संकटहारिणी, सर्वसारभूता, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवी को मेरा सतत
 प्रणाम है ॥१२॥ अत्यन्त सौम्या, अत्यन्त रौद्रा देवी को हम बार-बार प्रणाम करते हैं । जगत् की
 आधारभूता कृति देवी को पुनः-पुनः मेरा प्रणाम है ॥१३॥ सब प्राणियों में विष्णुमाया के नाम से कही
 जाने वाली देवी को मेरा सतत नमस्कार है ॥१४-१६॥ सभी प्राणियों में चेतना कहलाने वाली देवी
 को मेरा अभिवादन है ॥१७-१९॥ सभी जीवों में बुद्धिरूप से निवास करने वाली देवी को मेरा बार-
 बार प्रणाम है ॥२०-२२॥ सभी प्राणियों में निद्रारूप में स्थित देवी को मेरा प्रणाम है ॥२३-२५॥

- या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ २६ ॥ नमस्तस्यै॥ २७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ २८ ॥ ●
 ● या देवी सर्वभूतेषु छाया रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ २९ ॥ नमस्तस्यै॥ ३० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३१ ॥ ●
 दु या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ३२ ॥ नमस्तस्यै॥ ३३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३४ ॥ प
 र्गा स या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ३५ ॥ नमस्तस्यै॥ ३६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३७ ॥ श्र
 मो यत् स या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ३८ ॥ नमस्तस्यै॥ ३९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४० ॥ ५
 ती या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ४१ ॥ नमस्तस्यै॥ ४२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४३ ॥ ध्या
 यः ● या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ४४ ॥ नमस्तस्यै॥ ४५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४६ ॥ ●
 ● या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ४७ ॥ नमस्तस्यै॥ ४८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४९ ॥ ●
 ● या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ५० ॥ नमस्तस्यै॥ ५१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ५२ ॥ ●
 ● या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ५३ ॥ नमस्तस्यै॥ ५४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ५५ ॥ ●

समस्त जीवों में क्षुधाग्नि रूप से विद्यमान देवी को मेरा प्रणाम है ॥२६-२८॥ सभी जीवों में छाया रूप से स्थित, सभी प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित, सभी जीवों में तृष्णारूप से स्थित, सभी जीवों में क्षमारूप से विद्यमान देवी को मेरा पुनः-पुनः प्रणाम है ॥२९-४०॥ जो देवी सभी जीवों में जाति रूप से स्थित, लज्जारूप से स्थित तथा शान्ति रूप से स्थित हैं, उन देवी को मेरा बारम्बार अभिवादन है ॥४१-४९॥ सभी प्राणियों में श्रद्धारूप से तथा कान्तिरूप से स्थित देवी को मेरा नमस्कार है ॥५०-५५॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥५६॥ नमस्तस्यै॥५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥५८॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥५९॥ नमस्तस्यै॥६०॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६१॥
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥६२॥ नमस्तस्यै॥६३॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६४॥
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥६५॥ नमस्तस्यै॥६६॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६७॥
 या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥६८॥ नमस्तस्यै॥६९॥ नमस्तस्यै नमोनमः॥७०॥
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥७१॥ नमस्तस्यै॥७२॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥७३॥
 या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै॥७४॥ नमस्तस्यै॥७५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥७६॥
 इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या। भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥७७॥
 चित्तिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै॥७८॥ नमस्तस्यै॥७९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥८०॥

जो सभी जीवों में लक्ष्मीरूप तथा वृत्तिरूप से विद्यमान हैं, उन देवी को मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥५६-६१॥ सभी जीवों में स्मृतिरूप से वर्तमान देवी को मेरा बार-बार प्रणाम है॥६२-६४॥
 जिन देवी की सभी जीवों में दया तथा तुष्टिरूप से स्थिति है, उन देवी को मेरा प्रणाम है॥६५-७०॥ जो देवी सभी प्राणियों में मातृ तथा भ्रान्तिरूप से विद्यमान हैं, उन्हें मेरा बार-बार नमस्कार है॥७१-७६॥ जो देवी समस्त जीवों के इन्द्रिय वर्ग की स्वामिनी तथा सभी प्राणियों में व्याप्त रहनेवाली हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है॥७७॥ जिन देवी की इस सृष्टि में चैतन्यरूप से व्याप्ति है, उन देवी को मेरा प्रणाम है॥७८-८०॥

● स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात् तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
 ● करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥८१॥
 दु या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यपितै- रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
 गी या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्ति - विनम्र - मूर्तिभिः ॥८२॥
 स

ऋषिरुवाच ॥८३॥

● एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती । स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥८४॥
 ● साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूभवद्भिः स्तूयतेऽत्र का । शरीरकोशतश्चास्याः समुद्धूताब्रवीच्छिवा ॥८५॥

● प्राचीन काल में अपनी इष्ट-सिद्धि की पूर्ति होने से देवों ने जिनका स्तवन तथा देवों के राजा इन्द्र
 ● ने बहुकाल तक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकारिणी ईश्वरी हमारा हित तथा मंगल करें तथा मेरी
 ● सभी आपदाओं का निवारण करें ॥८१॥ जिन परमेश्वरी को हम सब देवगण, दैत्यों द्वारा त्रस्त हो इस
 ● समय प्रणाम करते हैं तथा जो भक्तियुक्तचित्त के पुरुषों द्वारा स्मरण करने से समस्त संकटों को तत्काल
 ● टाल देती हैं, वे जगदम्बा हमारे संकट को नष्ट करें ॥८२॥

● ऋषि बोले-॥८३॥ हे राजन् ! देवताओं के इस स्तुतिपाठ के समय गंगास्नानार्थ वहाँ श्री पार्वती देवी
 ● आयी हुई थीं ॥८४॥ उन सुन्दर भृकुटीवाली भगवती पार्वती ने देवताओं से प्रश्न किया-आप लोग यहाँ
 ● किसकी स्तुति कर रहे हैं ? तब उन्हीं के शरीर-कोश से उत्पन्न हुई शिवा देवी ने कहा-॥८५॥

• स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैः समैतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६॥
 • शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका । कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥
 दुर्गा तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती । कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥
 स ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् । ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भ निशुम्भयोः ॥८९॥
 प्ल ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा । काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥
 स ती नैव तादृक् क्वचिद् रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् । ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥९१॥
 ध्या यः

युद्ध में निशुम्भ दैत्य से पराजित तथा शुम्भ से अपमानित होकर ये समस्त देवता मेरी ही स्तुति कर रहे हैं ॥८६॥ पार्वतीजी के शरीरकोश से अम्बिका देवी की उत्पत्ति हुई थी, इसलिए वे इस त्रैलोक्य में (कौशिकी) नाम से सम्बोधित की जाती हैं ॥८७॥ कौशिकी की उत्पत्ति के बाद पार्वती देवी का शरीर काले रंग में परिवर्तित हो गया, एतदर्थ-वे हिमालय पर रहनेवाली कालिका देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥८८॥ इसके पश्चात् वहाँ शुम्भ-निशुम्भ के भृत्य चण्ड-मुण्ड ने आकर परम मनोमुग्धकारी रूप वाली अम्बिका देवी को देखा ॥८९॥ देवी को देखकर वे शुम्भ दानव के पास जाकर बोले-महाराज ! मैंने हिमालय पर एक अत्यन्त रूपवती स्त्री देखी है, जिसकी कान्ति से हिमालय उद्भासित हो रहा है ॥९०॥ वैसा अनिन्द्य रूप कभी किसी ने नहीं देखा होगा । हे असुराधिप ! आप पता लंगाइए कि वह कौन है और उसे ग्रहण कर लीजिए ॥९१॥

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा । सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥१२॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो । त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥१३॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥१४॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं यदासीद् वेधसोऽद्भुतम् ॥१५॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् । किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥१६॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति । तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत् प्रजापतेः ॥१७॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हता । पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥१८॥

उस स्त्री-रत्न के समस्त अंग बहुत ही कमनीय हैं और वह अपने अंगों की आभा से समस्त दिशाओं को आलोकित कर रही है। हे दैत्यराज ! अभी तक वह हिमालय पर ही वर्तमान है, आप उसे चलकर देख सकते हैं ॥१२॥ हे प्रभो ! इस समय आपके गृह में संसार के सभी रत्न, घोड़े, हाथी आदि शोभित हो रहे हैं ॥१३॥ हाथियों में ऐरावत, वृक्षों में पारिजात तथा घोड़ों में उच्चैःश्रवा तो आपने ही इन्द्र से छीन लिया है ॥१४॥ हंसों से जुता हुआ ब्रह्माजी का यह रत्नजड़ित अद्भुत विमान अब आपके यहाँ पड़ा है ॥१५॥ महापद्म नामक कुबेर की निधि छीनकर आपने हस्तगत कर लिया है। केसरी से सुशोभित किञ्जल्किनी नाम की माला समुद्र ने आपको अर्पित कर दी है, जिसके कमल कभी भी नहीं कुम्हलाते और सदा हरे-भरे रहते हैं ॥१६॥ सोना बरसाने वाला वरुणदेव का छत्र भी आपके घर में शोभित हो रहा है तथा प्रजापति का यह उत्तम रथ भी आपके पास उपलब्ध है ॥१७॥ हे दैत्येश्वर ! मृत्यु की उत्क्रान्तिदा नामक शक्ति भी आपने अपने अधिकार में ले ली है तथा वरुण का पाश और समुद्रगर्भ

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः । वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचं च वाससी ॥९९॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते । स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥१००॥

ऋषिरुवाच ॥१०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्ड-मुण्डयोः । प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥१०२॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम । यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने । सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥

दूत उवाच ॥१०५॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥

के अनेकों रत्न आपके अनुज निशुम्भ के पास हैं । अग्नि ने स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपको अर्पित किये हैं ॥९८-९९॥ हे दैत्यराज ! इस प्रकार आपने समस्त रत्नों का संग्रह कर लिया है, फिर यह स्त्रियों में रत्नमयी देवी को आपने क्यों छोड़ रखा है । इसे भी आप अपने अधिकार में कर लीजिए ॥१००॥ ऋषि ने कहा-॥१०१॥ चण्ड-मुण्ड के मुख से ऐसी बात सुनकर शुम्भ ने अपने महादैत्य सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास सन्देश कहलाने के लिए भेजा । उस दैत्य से शुम्भ ने कहा कि तुम उसे बातों में बहलाकर मेरे पास अतिशीघ्र लाने का प्रयत्न करना ॥१०२-१०३॥ वह दूत पर्वत के उस मनोरम भाग में गया, जहाँ देवी विराजमान थीं । उनसे उस दैत्य ने मधुर वाणी में कहना प्रारम्भ किया ॥१०४॥ दूत ने कहा-॥१०५॥ हे देवि ! इस समय दैत्यराज शुम्भ ही इस त्रिभुवन के एकमात्र स्वामी हैं । मैं उनका दूत बनकर उनकी आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ ॥१०६॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु । निर्जिताखिल-दैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥
 मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः । यज्ञभागानहं सर्वानुपाशनामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
 त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नं च हत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥
 क्षीरोदमथनोद्धूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
 यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥
 स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥

उनकी आज्ञा का पालन देवता लोग सदैव निर्विरोध रूप से करते आये हैं । कोई भी उनकी आज्ञा
 टालने का दुस्साहस नहीं कर सकता है । उन्होंने समस्त देवों पर विजय प्राप्त की है और तुम्हारे लिए
 जो सन्देश दिया है, उसे दत्तचित्त होकर सुनो ॥१०७॥ समस्त विश्व मेरे अधीनस्थ है, देवता भी मेरी
 आज्ञा का पालन करते हैं । सम्पूर्ण यज्ञांशों को मैं ही भिन्न-भिन्न रूपों से ग्रहण करता हूँ ॥१०८॥ तीनों
 लोकों के श्रेष्ठतम रत्न सभी मेरे अधिकार में हैं । देवराज इन्द्र का वाहन श्रेष्ठरत्न ऐरावत नाम का
 हाथी मेरे पास है ॥१०९॥ क्षीरसागर के मन्थनकाल में उत्पन्न अश्वरत्न उच्चैःश्रवा को अब देवताओं
 ने मुझे अर्पित कर दिया है ॥११०॥ हे सुन्दरि ! इन पदार्थों के अतिरिक्त और भी जितने अमूल्य रत्न
 या पदार्थ देवों, गन्धर्वों या नागों के अधिकार में थे, वे सब अब मेरे पास उपलब्ध हैं ॥१११॥ हे
 देवि ! हम लोग तुम्हें स्त्रियों में रत्न मानते हैं । अतएव तुम हमारे पास आओ, क्योंकि उन अधिकृत
 रत्नों का उपभोग करने वाला एकमात्र मैं ही हूँ ॥११२॥

मां वा ममा नुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
 परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥

देव्युवाच ॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित् त्वयोदितम् । त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥११८॥

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्यां तत् क्रियते कथम् । श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११९॥

हे चंचल चितवन वाली सुन्दरि ! तुम मेरे या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भ के पास रहकर दुर्लभ सुखों का उपभोग करो, क्योंकि तुम रत्नस्वरूपिणी हो ॥११३॥ मेरा वरण करके तुम अतुल सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य की उत्तराधिकारिणी बनोगी । अपनी बुद्धि से ऐसा विचार कर तुम मेरी पत्नी बनना स्वीकार करो ॥११४॥ ऋषि ने कहा-॥११५॥ दूत के मुख से ऐसी उक्ति सुनकर कल्याणमयी भगवती जगद्धात्री दुर्गा मन में गम्भीर भाव से मुस्कुराते हुए उस दूत से कहने लगीं ॥११६॥ देवों ने उस दूत को सम्बोधित करते हुए कहा-॥११७॥ हे दूत ! तुमने जो बात कही है, वह बिल्कुल सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है । शुम्भ तीनों लोकों का इस समय स्वामी और उसका भाई निशुम्भ भी उसी के सदृश पराक्रमशील है ॥११८॥ किन्तु इस विषय में मैंने पहले जो प्रतिज्ञा ठान ली है, उसे मैं किस प्रकार तोड़ सकती हूँ । मैंने अपनी अल्पज्ञता के कारण जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे तुम्हें सुनाती हूँ ॥११९॥

● यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥१२०॥ ●
 ● तदा गच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः । मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥१२१॥ ●

दूत उवाच ॥१२२॥

● अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भ-निशुम्भयोः ॥१२३॥ ●
 ● अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि । तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥१२४॥ ●
 ● इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे । शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥१२५॥ ●
 ● सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः । केशाकर्षण-निर्धूत-गौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥ ●

● मेरी प्रतिज्ञा है कि जो भी प्राणी मुझे समर में पराजित करेगा, जो मेरे अभिमान का खण्डन करेगा ●
 ● तथा जो मेरे ही समान पराक्रमी तथा साहसी होगा, वही मेरा स्वामी बन सकेगा ॥१२०॥ इसलिये ●
 ● महादैत्य शुम्भ या निशुम्भ स्वयं ही जब यहाँ आकर मुझे पराजित कर दें तो मेरा विवाह उनसे हो ●
 ● सकता है। इसमें विलम्ब करना उचित नहीं है ॥१२१॥ तब देवी से दूत ने कहा-॥१२२॥ हे देवि ! ●
 ● तुम मेरे सामने ऐसी अभिमानपूर्ण बातें न करो । इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कौन है जो शुम्भ-निशुम्भ के ●
 ● सामने खड़ा होने का साहस कर सके ॥१२३॥ अन्य निम्नकोटि के दैत्यों के सामने भी सारे देवता ●
 ● मिलकर युद्ध में पार नहीं पा सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर क्या कर सकती हो ? ॥१२४॥ जिन ●
 ● शुम्भ आदि महापराक्रमी दैत्यों के आगे इन्द्रादि देवता भी भय के कारण युद्ध-विमुख हो गये, उनके ●
 ● सामने तुम अकेली स्त्री होकर कैसे जा सकती हो ॥१२५॥ अतएव तुम मेरा ही कहना मानकर शुम्भ-^{१०३} ●
 ● निशुम्भ के पास चलो । ऐसा करने से तुम्हारी महत्ता की रक्षा होगी, अन्यथा जब वे तुम्हारे केश ●
 ● पकड़कर बलपूर्वक घसीटते हुए ले जायेंगे, तब तुम्हें अपनी मर्यादा खो देनी पड़ेगी ॥१२६॥ ●

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥
 स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः । तदा चक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥३॥ ॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या-दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

उवाच १, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ॥३८८॥

षष्ठोऽध्यायः (६)

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसंस्तरलावली-भास्वद् देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।
 माला-कुम्भ-कपाल-नीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्गनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

दूत की बात सुनकर देवी ने उत्तर दिया-॥१२७॥ तुम्हारा कहना उचित ही है, शुम्भ-निशुम्भ निःसंदेह बलवान् और पराक्रमी दैत्य हैं, किन्तु मैं क्या करूँ ? मैंने पहले बिना सोचे-समझे ही ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है कि उसे कैसे भंग करूँ ? ॥१२८॥ अतएव अब तुम वापस लौट जाओ और अपने स्वामी से मेरी कही हुई बातें आदरपूर्वक समझाकर कहो । उसके बाद वे जैसा उचित समझेंगे वैसा करेंगे ॥१२९॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

दूत-संवाद नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

ध्यान- मैं, सर्वज्ञेश्वर भैरव के अंक की निवासिनी परम श्रेष्ठ पद्मावती देवी की आराधना करता हूँ । वे देवी नागराज-के आसन पर आसीन हैं, नागों के फणों में शोभित होनेवाली मणिमाला से उनका शरीर भासित हो रहा है । उनके अंगों की दीप्ति सूर्य के समान है और तीन नेत्र उनके सौन्दर्य का

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः । समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुराट् ततः । सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥३॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः । तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥४॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वेत्तिष्ठतेऽपरः । स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥५॥

ऋषिरुवाच ॥६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः । वृत्तः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥७॥

वर्धन कर रहे हैं। उनके हाथों में माला, कुम्भ, कपाल और कमल हैं तथा उनके मस्तक में अर्द्धचन्द्राकार मुकुट शोभायमान हो रहा है।

ऋषि कहने लगे-॥१॥ देवी के मुख से ऐसी बात सुनकर दूत को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने दैत्यराज के पास जाकर विस्तारपूर्वक समाचार कहा ॥२॥ दूत से ऐसा उत्तर सुनकर वह दैत्यराज अत्यन्त क्रोधित हो उठा और अपने सेनानायक धूम्रलोचन से कहा ॥३॥ धूम्रलोचन ! तुम अतिशीघ्र अपनी सेना के साथ जाकर उस दुष्टा स्त्री का केश बलपूर्वक खींचते हुए यहाँ उठा लाओ ॥४॥ उसका रक्षक यदि यक्ष, गन्धर्व, देवता आदि कोई भी हों तो तुम उसे अवश्य ही मार डालना ॥५॥

तब ऋषि ने कहा-॥६॥ शुम्भ का आदेश पाकर वह धूम्रलोचन अपनी साठ हजार सेना के साथ वहाँ से तुरन्त ही चल पड़ा ॥७॥

सदृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् । जगादोच्चैः प्रयाहीति मूल शुम्भ-निशुम्भयोः ॥८॥
 न चेत् प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति । ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥९॥

देव्युवाच ॥१०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः । बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥११॥

ऋषिरुवाच ॥१२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः । हुंकारेणैव तं भस्मसाचकाराम्बिका ततः ॥१३॥

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१४॥

वहाँ पहुँचकर उसने हिमालय पर निवास करनेवाली देवी को देखा और ललकार कर आदेश भरे स्वर में कहा-अरी ! तू मेरे स्वामी शुम्भ-निशुम्भ के पास चल ॥८॥ यदि इस समय तुम स्वेच्छा से मेरे साथ नहीं चलेगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़कर घसीटते हुए जबरन तुम्हें ले चलूँगा ॥९॥

तब देवी ने उससे कहा-॥१०॥ तुम दैत्यराज के आदेश से आये हो और तुम स्वयं भी बलवान् हो तथा तुम्हारे साथ इस समय विशाल-वाहिनी भी है । ऐसी अवस्था में यदि तुम मुझे बलात् भी ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या बिगाड़ सकूँगी ? ॥११॥ ऋषि ने कहा-॥१२॥ देवी के उत्तर से धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ पड़ा । तब देवी अम्बिका ने 'हुँ' शब्द का उच्चारण करके उसे भस्मीभूत कर डाला ॥१३॥

तत्पश्चात् क्रुद्ध हुई उस विशाल सेना ने देवी पर आक्रमण कर दिया-। फिर अम्बिका और राक्षसी सेनाओं में तीक्ष्ण बाणों, शक्तियों तथा फरसों का युद्ध आरम्भ हो गया ॥१४॥

ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम्। पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥१५॥
 कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्। आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥१६॥
 केषाञ्चित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी। तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥
 विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे। पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥
 क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना। तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१९॥
 श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्। बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥२०॥
 चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः। आज्ञापयामास च तौ चण्ड-मुण्डौ महासुरौ ॥२१॥

इतने में ही देवी का वाहन सिंह भी क्रोध से गर्जन करके अपने गरदन के बालो को हिलाता हुआ
 असुरों की सेना में कूद पड़ा ॥१५॥ उस सिंह ने कुछ राक्षसों को पंजों के खरोंच से, कितनों को अपने
 जबड़ों से विदीर्ण करके और कितनों को धराशायी करके ओष्ठ की दाढ़ों का प्रहार करके मार
 डाला ॥१६॥ कितने दानवों का उस सिंह ने अपने नाखूनों से पेट फाड़ दिया, कितनों का सिर थपड़
 मार-मार कर धड़ से अलग कर दिया ॥१७॥ कितनों की भुजाएँ और मस्तक उसने काट खाये तथा
 अपनी गरदन के बाल हिलाते हुए उसने कितनों के ही पेट चीरकर उसने रक्तपान कर डाले ॥१८॥
 अत्यन्त क्रोधित देवी के उस वाहन महाबली सिंह ने क्षणमात्र में ही सारी दानवी सेना का अन्त कर
 दिया ॥१९॥ शुम्भ राक्षस को जब यह समाचार मिला कि युद्ध में धूम्रलोचन मारा गया और उसकी
 सेना सिंह के द्वारा नष्ट हो गयी ॥२०॥ तब वह अत्यन्त कुपित हुआ। क्रोध में आकर उसके अधरोष्ठ
 कंपित हो उठे। उसने चण्ड-मुण्ड नामक दो महाबली दैत्यों को आदेश दिया ॥२१॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलबहुभिः परिवारितौ । तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥२२॥
 केशेष्वकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि । तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३॥
 तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते । शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ॐ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भ-निशुम्भ-सेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४, एवमादितः ४१२॥

सप्तमोऽध्यायः (७)

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
 कङ्कालाब्जमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुर-मधु-मदां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥

हे चण्ड-मुण्ड ! तुम लोग अपनी विशाल सेना लेकर जाओ और उस देवी को घसीटकर अथवा उसे बाँधकर पकड़ लाओ । यदि इस प्रकार उसका आना कठिन हो तो उस पर समस्त दानवी सेना के शस्त्रों का प्रहार करके वहीं पर वध कर देना ॥२२-२३॥ उस दुष्टा की हत्या हो जाने तथा सिंह के मारे जाने पर उस अम्बिका को पाश से बद्ध करके यहाँ तुरन्त ही लौट आओ ॥२४॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

सेनापति शुम्भ-निशुम्भ एवं धूम्रलोचन-वध नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

ध्यान - मैं मातङ्गी देवी का चिन्तन करता हूँ । वे रत्नजटित सिंहनाद पर विराजमान होकर बोलते हुए तोते के मधुर शब्द को श्रवण कर रही हैं । वे श्याम वर्ण वाली देवी अपने एक पाद कमल पर

स
प्त
मो
ऽ
ध्या
यः

३० नृसिंहाच ॥१॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्ड-मुण्डपुरोगमाः । चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥२॥
 ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् । सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥३॥
 ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः । आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥४॥
 ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति । कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥५॥
 भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥६॥

रखकर मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किये हुए हैं । कहार फूलों की माला पहने हुए वे वीणावादन कर रही हैं । उनके अंग में कंचुकी कसी हुई है । वे लाल रंग की साड़ी धारण कर हाथ में शंखपात्र लिये हैं । उनके मुख पर मधु के हलके नशे का आभास हो रहा है और उनके ललाट में बिन्दी लगी हुई है ।
 ऋषि ने कहा-॥१॥ इसके पश्चात् शुम्भ दैत्य के आदेश से वे चण्ड-मुण्ड नामक दैत्य अपनी चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ, पैदल) सेना को अस्त्र-शस्त्र से सज्जित करके चल पड़े ॥२॥ वहाँ पहुँच कर पर्वतराज हिमालय के स्वर्णमय शिखर के ऊपर सिंह पर आरूढ़ देवी को देखा । वे मन्द हास्य कर रही थीं ॥३॥ उन देवी को देखकर दानवी सेना उन्हें पकड़ने के लिए झपट पड़ी । किसी राक्षस ने धनुष उठाया, तो किसी ने म्यान से तलवार खींच ली और कुछेक देवी के पास आकर खड़े हो गये ॥४॥ तब अम्बिका ने उन पर अत्यन्त क्रोध प्रकट किया, उस समय क्रोधानल में दग्ध होने के कारण उनका मुख काला दिखाई पड़ने लगा ॥५॥ उनकी भौहें तन गयीं और वहाँ से विकरालमुखी काली का प्रादुर्भाव हुआ । उनके हाथ में तलवार और पाश था ॥६॥

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा । द्वीपिचर्मपरीधाना शुच्यमांसातिभैरवा ॥७॥
 अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥८॥
 सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम् ॥९॥
 पाष्णि-ग्राहाङ्कुशग्राहि-योध-घण्टा-समन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥१०॥
 तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह । निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥
 एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥१२॥

वे चीते के चमड़े की साड़ी पहने नरमुण्डों की माला से विभूषित होकर हाथ में विचित्र प्रकार की तलवार धारण किये हुए थीं । उनके शरीर का मांस सूखकर केवल अस्थिपंजर शेष रह गया था, जिसके कारण उनकी आकृति बड़ी ही डरावनी लग रही थी ॥७॥ उनका मुख-गह्वर बहुत विशाल था, जीभ लप-लप करने के कारण वे बहुत ही भयंकर जान पड़ रही थीं । उनके नेत्र भीतर की ओर गह्वे में धँसे हुए और रक्तिम थे, वे भयंकर गर्जना से सभी लोगों को कम्पित कर रही थीं ॥८॥ वे कालिका देवी बड़े-बड़े असुरों का वध करती हुई प्रबल वेग से आसुरी सेना पर टूट पड़ीं और उन सबको अपना ग्रास बनाने लगीं ॥९॥ वे देवी पार्श्वरक्षकों, अंकुशधारी महावतों, बड़े-बड़े योद्धाओं और घण्टाधारी कितने ही विशालकाय हाथियों को एक हाथ से पकड़ कर मुँह में निगल लेती थीं ॥१०॥ इसी प्रकार घोड़े, रथ और सारथि-सहित रथी सैनिकों को मुँह में डालकर वे बहुत ही भयानक आवाज में चबा रही थीं ॥११॥ किसी के बाल खींचकर, किसी का गला दबोचकर, किसी को पैरतले रौंदकर और किसी को छाती के धक्के से भूमि पर गिराकर यमलोन्मत्त भेज देती थीं ॥१२॥

तैर्मुक्तानि च शास्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः । मुखेन जघ्नात् रुक्मा दशनैर्मथितान्यपि ॥१३॥
 बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् । ममर्दभिक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तथा ॥१४॥
 असिना निहताः केचित् केचित् खट्वाङ्गताडिताः । जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१५॥
 क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम् । दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१६॥
 शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षी तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७॥
 तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् । बभ्रुयथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥
 ततो जहासातिरुषा भीमं भैरव नादिनी । काली कराल-वक्त्रान्तर्दुर्दर्श-दशनोज्ज्वला ॥१९॥

वे दैत्यों द्वारा निक्षिप्त बड़े-बड़े अस्त्रों को मुँह से पकड़कर दाँतों से चूर-चूर कर डालती थीं ॥१३॥
 काली ने उन बलशाली, दुराचारी दैत्यों की समस्त सेना को मसल दिया, कुछेक को खा गयीं और
 कितने को ही वहाँ से खदेड़ दिया ॥१४॥ कोई तलवार की मार से मार डाले गये, कोई खट्वांग
 (बहुत बड़ी तलवार) से पीटे गये और कितने ही नुकीले दाँतों से पिसकर मारे गये ॥१५॥ इस प्रकार
 देवी ने क्षणभर में उस आसुरी सेना का संहार कर डाला । यह देखकर चण्ड उन विकराल काली की
 ओर दौड़ पड़ा ॥१६॥ फिर महादैत्य मुण्ड ने बाणों की वर्षा करके तथा हजारों बार प्रयुक्त चक्रों से
 उन भयानक देवी को ढँक दिया ॥१७॥ देवी के मुख में प्रविष्ट होते हुए वे अनेकों चक्र ऐसे जान
 पड़े मानो सूर्य के बहुत से मण्डल बादलों में समा गये हों ॥१८॥ तब भयंकर गर्जना करने वाली
 काली ने रोष में भीषण अट्टहास किया । उस समय उनके विकराल मुख के भीतर कठिनता से दिखाई
 पड़ने वाले दाँतों की चमक से वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई पड़ रही थीं ॥१९॥

● उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत। गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥२०॥ ●

● अथ मुण्डोऽभ्यधावतां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्। तमप्यपातयद् भूमौ सा खङ्गाभिहतं रुषा ॥२१॥ ●

● हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्। मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥२२॥ ●

● शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च। प्राह प्रचण्डादृहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥२३॥ ●

● मया तवात्रोपहतौ चण्ड-मुण्डौ महापशू। युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥२४॥ ●

ऋषिरुवाच ॥२५॥

● तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्ड-मुण्डौ महासुरौ। उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥२६॥ ●

● फिर तो देवी ने बहुत बड़ी तलवार से 'हं' शब्द का उच्चारण करके चण्ड के केश पकड़ लिये

● और अपनी तलवार से उसका मस्तक धड़ से अलग कर दिया ॥२०॥ चण्ड को मरा देखकर मुण्ड

● देवी की ओर दौड़ पड़ा। तब देवी ने क्रोधित होकर अपनी तलवार के आघात से उसे भी धराशायी

● कर दिया ॥२१॥ चण्ड-मुण्ड के मरते ही बची-खुची सेना भय से व्याकुल होकर रणभूमि से पलायित

● हो गयी ॥२२॥ तब देवी चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक को हाथ में लेकर चण्डिका के पास पहुँचकर

● विकट अदृहास करके कहा-॥२३॥ हे देवि ! मैंने इस महापशु चण्ड-मुण्ड को तुम्हें अर्पित किया है।

● अब युद्धभूमि में तुम शुम्भ और निशुम्भ का स्वयं ही संहार करना ॥२४॥ ११२

● ऋषि ने कहा-॥२५॥ चण्ड-मुण्ड के मस्तक को देखकर कल्याणमयी चण्डी ने काली से मधुर

● स्वर में कहा-॥२६॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यसि ॥३ॐ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७, एवमादितः ॥४३९॥

अष्टमोऽध्यायः (८)

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृत-पाशाङ्कुश-बाण-चापहस्ताम्।

अणिमादिभिरावृतां मयूखै-रहमित्येव विभावये भवानीम्॥

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते। बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥२॥

देवि ! तुम चण्ड और मुण्ड को लेकर मेरे पास आयी हो, इस लिए विश्व में तुम्हारी ख्याति चामुण्डा के नाम से होगी ॥२७॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

चण्ड-मुण्ड वध नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

ध्यान-मैं अणिमा आदि सिद्धियों (सिद्धियाँ आठ मानी गयी हैं, यथा- अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्य, प्राक्राम्य, ईशित्व और वशित्व) की रश्मियों से युक्त भवानी का ध्यान करता हूँ। उनका शरीर रक्तवर्ण, नेत्र करुणा के तरंगों से युक्त तथा हाथों में पाश, अंकुश, बाण और धनुष शोभित हो रहे हैं।

ऋषि ने कहा- ॥१॥ चण्ड-मुण्ड दैत्यों के मारे जाने पर दैत्यराज शुम्भ के मन में अत्यन्त क्रोध

अष्टमोऽध्यायः

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्। उद्योगं सर्व सैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३॥
 अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः। कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥४॥
 कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै। शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥
 कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः। युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥
 इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः। निर्जगाम महासैन्य - सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥७॥
 आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्। ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥८॥
 ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप। घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥९॥

उत्पन्न हुआ और उसने अपनी समस्त दानवी सेना को युद्ध के लिए एक साथ प्रस्थान करने की आज्ञा दी ॥२-३॥ शुम्भ ने कहा-आज उदायुध नामक छियासी दैत्य सेनानायक अपनी सम्पूर्ण सेनाओं के साथ युद्धभूमि में चले। कम्बु नाम वाले दानवों के चौरासी सेनापति अपनी वाहिनी के साथ युद्धस्थल में जायें ॥४॥ पचास कोटि वीर्यकुल के और सौ धौम्रकुलोत्पन्न असुर सेनापति मेरी आज्ञा से युद्ध में खाना हो जायें ॥५॥ कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय दैत्य भी युद्ध के लिए मेरी आज्ञा से तुरन्त तैयार होकर समरभूमि में चल दें ॥६॥ क्रूर शासक असुरपति शुम्भ इस प्रकार सबको आदेश देकर स्वयं सहस्रों बड़े-बड़े सैन्यदल के साथ युद्ध के लिए खाना हुआ ॥७॥ उसकी विशाल सेना को अपनी ओर बढ़ते देखकर देवी चण्डिका ने धनुष की टंकार से पृथ्वी और आकाश को गुंजायमान कर दिया ॥८॥ तत्पश्चात् देवी के वाहन सिंह ने भी भयंकर शब्द से दहाड़ना शुरू कर किया। फिर तो अम्बिका ने घण्टे के घोर रव से उस ध्वनि को और भी वर्धित कर दिया ॥९॥

धनुर्ज्या-सिंह-घण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा। निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥१०॥
 तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्। देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥११॥
 एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्। भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥१२॥
 ब्रह्मेश-गुह-विष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः। शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्-रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१३॥
 यस्य देवस्य यद्-रूपं यथाभूषणवाहनम्। तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१४॥
 हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः। आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१५॥
 माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी। महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥१६॥

धनुष की टंकार, सिंह की गर्जना और घण्टे की ध्वनि से समस्त दिशाएँ गुंजित हो उठीं। उस
 भीषण शब्द से काली ने अपने विकट मुख को और भी विस्तृत कर लिया तथा इस प्रकार से वह
 पूर्ण विजयिनी बनीं ॥१०॥ उस भीषण नाद को सुनकर आसुरी सेनाओं ने चण्डिका, काली तथा सिंह
 को क्रोधपूर्वक चतुर्दिक् से घेर लिया ॥११॥ हे राजन्! इसी समय असुरों के संहार तथा देवताओं
 के उत्थान के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवों की महान् पराक्रम-सम्पन्न
 शक्तियाँ भी उनके शरीरों से निकलकर उन्हीं के रूप में देवी चण्डिका के पास गयीं ॥१२-१३॥
 देवताओं के रूप, वेश, वाहन आदि के अनुरूप ही उनकी शक्तियाँ असुरों से युद्ध करने के लिए आ
 गयीं ॥१४॥ सर्वप्रथम हंस की सवारी पर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमण्डलु से सुशोभित ब्रह्मा जी की शक्ति
 प्रकट हुई, जिसे ब्रह्माणी कहा जाता है ॥१५॥ महादेव की शक्ति बैल पर आरूढ़ होकर हाथों में श्रेष्ठ
 त्रिशूल धारण कर, शेषनाग का कङ्कन पहने, मस्तक में चन्द्ररेखा से सज्जित होकर वहाँ आ गयीं ॥१६॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना। यद्युमध्याययौ दत्यानम्बिका गृहरूपिणी ॥१७॥
 तथैव वैष्णवी शक्तिर्गुरुडोपरि संस्थिता। शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्ग-हस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥
 यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः। शक्तिः साध्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१९॥
 नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः। प्राप्ता तत्र सटाक्षेप-क्षिप्त-नक्षत्रसंहतिः ॥२०॥
 वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता। प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२१॥
 ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः। हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२२॥
 ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा। चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२३॥

कार्तिकेय की शक्तिरूपा जगदम्बिका उन्हीं के अनुरूप मयूर पर आरूढ़ हो हाथ में शक्ति लेकर उन दानवों से युद्ध करने के लिए आ गयीं ॥१७॥ इसी प्रकर भगवान् विष्णु की शक्ति गरुड़ के वाहन पर विराजमान होकर शंख, चक्र, गदा, धनुष तथा खड्ग लिये वहाँ उपस्थित हुई ॥१८॥ अनुपम यज्ञवाराह का रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु की वह शक्ति भी वाराह (शूकर) शरीर धारण कर वहाँ आ गयीं ॥१९॥ भगवान् नृसिंह की नारसिंही शक्ति भी उन्हीं के अनुरूप शरीर धारण करके वहाँ आ पहुँची। उसकी गरदन में बालों के झोंके से आकाश की तारिकाएँ बिखर जाती थीं ॥२०॥ इसी प्रकार इन्द्र की शक्ति हाथ में वज्र लिये ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर आयी। उस शक्ति के भी इन्द्र के समान ही सहस्र नेत्र थे ॥२१॥ तब उन समस्त देवशक्तियों से आवृत शिवजी ने चण्डिका से कहा- मेरी प्रसन्नता के लिए तुम अब तुरन्त ही इन असुरों का वध करो ॥२२॥ तब देवी के शरीर से अत्यन्त भीषण और अति उग्र चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई, जिसके द्वारा सैकड़ों शृगालिनों की-सी आवाज हो रही थी ॥२३॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता । दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥२४॥
 ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥
 त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥
 बलावलेपादथ चेद् भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः । तदा गच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥
 यतो नियुक्तो दैत्येन तथा देव्या शिवः स्वयम् । शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२८॥
 तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः । अमर्षा पूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥
 ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यष्टिवृष्टिभिः । ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥

उस अपराजिता देवी ने धूमिल जटा वाले महादेवजी से कहा-भगवन् ! आप शुम्भ-निशुम्भ के पास दूत के वेश में जाइए ॥२४॥ और उन दोनों दानवों से कहिए । उनके साथ ही युद्ध में उपस्थित अन्य दानवों को भी यह सन्देश सुनाइए ॥२५॥ दैत्यों ! यदि तुम्हें जीने की चाह है तो पातालपुरी को लौट जाओ । इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त हो और देवगण यज्ञांश का उपभोग करें ॥२६॥ यदि बल के मद में तुम सभी युद्ध के इच्छुक हो तो आओ । मेरी योगिनियाँ तुम्हारे कच्चे मांसभक्षण से तृप्ति पावें ॥२७॥ उस देवी ने भगवान् शिव को दूत का कार्य सौंपा था, इसलिए वह 'शिवदूती' के नाम से जगत् में विख्यात हुई हैं ॥२८॥ वे दैत्य भी शिवजी के मुँह से देवी की बात सुनकर कुपित हो गये और कात्यायनी की ओर लपके ॥२९॥ तत्पश्चात् वे दैत्य क्रुद्ध होकर देवी पर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥३०॥

सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्जूल-शक्ति-परश्वधान् चिच्छेद लीलयाऽऽध्यात-धनुर्मुक्तैर्महिषुभिः ॥३१॥
 तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३२॥
 कमण्डलु-जलाक्षेप-हतवीर्यान् हतौजसः । ब्रह्माणी चाकरोच्छन्नून् येन येन स्म धावति ॥३३॥
 माहेश्वरी-त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी । दैत्यान् जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४॥
 ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः । पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३५॥
 तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३६॥
 नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् । नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३७॥

तब देवी ने भी धनुष की टंकार करके दैत्यों द्वारा निक्षिप्त बाण, शूल, शक्ति, परशु आदि को
 खिलवाड़ में ही काट दिया ॥३१॥ फिर काली आगे आकर राक्षसों को शूल के आघात से चीरने लगीं
 और खट्वाङ्ग के द्वारा उनको विध्वंस करती हुई रणस्थल में विचरण करने लगीं ॥३२॥ ब्रह्माणी भी
 अपना कमण्डलु लेकर जिस ओर निकल जाती थीं उधर ही जल छिड़क कर शत्रुओं को तेज तथा
 पराक्रमहीन कर देती थीं ॥३३॥ माहेश्वरी ने त्रिशूल, वैष्णवी ने चक्र तथा कार्तिकेय ने अपनी शक्ति
 के प्रहार से दानवों का नाश प्रारम्भ कर दिया ॥३४॥ इन्द्राणी के वज्र से आहत होकर सैकड़ों दैत्य
 खून की धारा बहाते हुए भूमि पर गिर पड़े ॥३५॥ वाराही-शक्ति ने कितने ही राक्षसों को थूथुन की चोट
 से नष्ट कर दिया । दाढ़ों के अग्रभाग से कितने की छाती को विद्ध कर दिया तथा कितने ही चक्र की चोट
 खाकर धरती पर गिर पड़े ॥३६॥ नारसिंही भी कितने ही दैत्यों को अपने नाखूनों से फाड़कर खा जातीं
 और सिंहनाद करके सम्पूर्ण दिशाओं को गुंजाती हुई रणभूमि में विचरण करने लगीं ॥३७॥

● चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३८॥
 ● इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥
 दुर्गा पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान् मातृगणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥ अष्ट
 रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः । समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४१॥ मो
 स युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः । ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥ ५
 प्त कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्त्राव शोणितम् । समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥ ध्या
 स ती यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जातास्तद्दीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥ यः

कितने ही राक्षसगण शिवदूती के प्रबल अट्टहास से भयभीत होकर रणभूमि पर लोटने लगे । उनके
 गिरते ही शिवदूती उन्हें अपना भक्ष्य बना लेती थीं ॥३८॥ इस प्रकार क्रुद्ध देवियों के द्वारा बड़े-बड़े
 असुरों का संहार होते देख दानवी सेना पलायित होने लगी ॥३९॥ मातृगणों से त्रस्त होकर युद्ध
 से विमुख होते, दैत्यों को देखकर रक्तबीज नामक महा-असुर अत्यन्त कुपित होकर युद्धभूमि में
 आ पहुँचा ॥४०॥ उसके शरीर से खून की बूँद टपकते ही उसी आकार का दूसरा दैत्य उत्पन्न हो
 जाता था ॥४१॥ महादैत्य रक्तबीज हाथ में गदा लेकर इन्द्रशक्ति के साथ युद्ध करने लगा । तब
 ऐन्द्री ने अपने वज्र के प्रहार से उसे आहत कर दिया ॥४२॥ वज्र से आहत होकर उसके शरीर
 से पृथ्वी पर रक्त टपकने लगा, जिससे उसी के समान अन्य दैत्य पैदा होने लग गये ॥४३॥ उसके
 शरीर से रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरी थीं, उतने ही दैत्य उत्पन्न हो गये, जो उसी के समान
 पराक्रमी थे ॥४४॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः । समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्रपाताति-भोषणम् ॥४५॥
 पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा । ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥
 वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभि जघान ह । गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥
 वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः । सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥
 शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥
 स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् । मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५०॥
 तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥
 तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुर्मुक्तमम् ॥५२॥

वे नये उत्पन्न राक्षस मातृगणों के साथ भयंकर युद्ध करने लगे ॥४५॥ इन्द्राणी के वज्र-प्रहार से
 उसका मस्तक आहत होकर खून बहाने लगा, जिससे हजारों नये दैत्य उत्पन्न होकर सामने आ गये ॥४६॥
 वैष्णवी ने अपने चक्र से रक्तबीज पर प्रहार किया, फिर ऐन्द्री ने गदा की चोट से घायल कर दिया ॥४७॥
 वैष्णवी के चक्र से घायल होने के कारण उसके शरीर से बहुत अधिक रक्तपात हुआ, जिसके कारण इतने
 दैत्यों की उत्पत्ति हुई कि समस्त जगत् व्याप्त हो गया ॥४८॥ कौमारी ने शक्ति, वाराही ने खड्ग और
 माहेश्वरी ने त्रिशूल चलाकर रक्तबीज को आहत कर दिया ॥४९॥ अत्यन्त कुपित होकर रक्तबीज ने भी
 अपनी गदा से मातृशक्तियों पर आघात किया ॥५०॥ शक्ति, शूल आदि के द्वारा घायल होने से उसके
 रक्त के द्वारा अगणित महादैत्य उत्पन्न हुए ॥५१॥ इस प्रकार उस महादैत्य से उत्पन्न नये दैत्यों के द्वारा
 समस्त विश्व आच्छादित हो गया । इस दृश्य को देखकर देवता लोग भयभीत हो गये ॥५२॥

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वर। उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३॥
 मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून् महासुरान्। रक्त बिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४॥
 भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान् महासुरान्। एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥
 भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे। इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥५६॥
 मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्। ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५७॥
 न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि। तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्त्राव शोणितम् ॥५८॥
 यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति। मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान् महासुराः ॥५९॥

देवताओं को हतोत्साहित देख चण्डिका ने शीघ्रता से काली से कहा-‘चामुण्डे ! तुम अपना मुख
 और भी अधिक विस्तृत करो ॥५३॥ मेरे शस्त्राघात से बहकर खून से उत्पन्न होने वाले महादैत्यों को
 तुम अपने इस वेगवान मुख से भक्षण कर डालो ॥५४॥ इसी प्रकार रक्त से उत्पन्न होने वाले नये
 राक्षसों को तुम अपना भक्ष्य बनाकर रणस्थल में विचरण करती रहो। ऐसा करते रहने से जब उसके
 शरीर का सम्पूर्ण रक्त बहकर निकल जायेगा तब वह स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त होगा ॥५५॥ ‘उन
 भयंकर दैत्यों को जब तुम चबा डालोगी तब दूसरे दैत्य उत्पन्न नहीं होंगे।’ ऐसा कहकर चण्डिका देवी
 ने अपने शूल से रक्तबीज पर प्रहार किया ॥५६॥ और काली ने अपने मुख में उसका रक्त भर लिया।
 तब रक्तबीज ने चण्डिका पर गदा से आघात पहुँचाया ॥५७॥ किन्तु गदा के उस प्रहार से देवी को
 कोई क्षति नहीं हुई। रक्तबीज के घायल शरीर से बहुत अधिक रक्तपात हुआ ॥५८॥ किन्तु खून बहते
 ही चामुण्डा ने उस रक्त को अपने मुँह में भर लिया। रक्त गिरने से काली के मुख में जो दैत्य उत्पन्न

तांश्च खादाथ चामुण्डा पपीतस्य च शोणितम्। देवां शूलैर्न वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥६०॥
 जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्। स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥६१॥
 नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः। ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥
 तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३, एवमादितः ॥५०२॥

नवमोऽध्यायः (९)

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
 बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

होते थे, उन्हें काली चबा डालती थीं और उसने रक्तबीज का खून भी पान कर लिया। तब देवी ने रक्तबीज को वज्र, बाण, खड्ग (तलवार), ऋष्टि आदि के प्रहार से मार डाला। हे राजन् ! इस प्रकार शस्त्रों के समूह से आहत एवं रक्तहीन होकर महादैत्य रक्तबीज भूतल पर गिर पड़ा। हे नरश्रेष्ठ ! इसे देखकर देवों में हर्ष का समुद्र उमड़ पड़ा ॥५९-६२॥ उन असुरों के रक्तपात के मद से उन्मत्त होकर सम्पूर्ण मातृसमूह नृत्य करने लग गया ॥६३॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य

में वर्णित रक्तबीज-वध नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

ध्यान-उन अर्धनारीश्वर का रंग बन्धूक, पुष्प और सुवर्ण के समान रक्तपीतयुक्त है, उनकी भुजाओं

‘ॐ’ राजोवाच ॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम । देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते । चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥३॥

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते । शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥५॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥६॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः । संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥

में सुन्दर स्फटिक की माला, पाश, अंकुश और वरद-मुद्रा सुशोभित है, उनका आभरण अर्धचन्द्र तथा वे तीन नेत्रों से शोभायमान हो रहे हैं, ऐसे अर्धनारीश्वर की मैं शरण में हूँ।

राजा ने कहा-॥१॥ हे भगवन् ! आपने रक्तबीज वध सम्बन्धित देवी चरित्र का विचित्र माहात्म्य मुझे बताया ॥२॥ रक्तबीज की मृत्यु के अनन्तर क्रुद्ध शुम्भ और निशुम्भ ने आगे क्या किया ? अब मैं उनका वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥३॥

तब ऋषि ने राजा से कहा-॥४॥ हे राजन् ! युद्ध में रक्तबीज तथा अन्य राक्षसों के हनन से शुम्भ-निशुम्भ के क्रोध की पराकाष्ठा हो गयी ॥५॥ इस प्रकार अपनी विशाल दैत्यसेना का संहार होते देख क्रुद्ध निशुम्भ देवी की ओर दौड़ पड़ा । उसके साथ ही दानवों की प्रमुख सेना थी ॥६॥ उसके आगे-पीछे तथा पार्श्व-भाग में बड़े-बड़े अंगरक्षक दैत्य थे, जो कुपित होकर अपने होंठ काटते हुए देवी को मार डालने के उद्देश्य से आये ॥७॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलेवृत्तः । निहन्तु चण्डिका कोपात् कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥
 ततो युद्धमतीवासीद् देव्या शुम्भ-निशुम्भयोः । शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥
 चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः । ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥
 निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥
 ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥
 छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः । तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥

महाबली शुम्भ भी अपनी समस्त सेना के साथ मातृगणों से युद्ध करने के पश्चात् चण्डिका के वध करने के लिए आ पहुँचा ॥८॥ इसके अनन्तर शुम्भ-निशुम्भ का घमासान युद्ध देवी के साथ होने लगा । वे दोनों महाबलवान् दैत्य मेघों की तरह अपने बाणों की देवी पर भीषण वर्षा कर रहे थे ॥९॥ उन दोनों के निक्षिप्त बाणों को चण्डिका ने अपने बाणों से काटकर शस्त्रों द्वारा उन राक्षसों के अंगों को पीड़ित कर दिया ॥१०॥ तब निशुम्भ ने तेज धारवाली तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवी के वाहन सिंह के मस्तक पर आघात किया ॥११॥ अपने वाहन सिंह के प्रहारित होने पर देवी ने क्षुरप्र नामक बाण के द्वारा निशुम्भ की उस तलवार को काट गिराया तथा अष्टरजत जड़ित ढाल को भी टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥१२॥ ढाल और तलवार से रहित होकर उस दानव ने शक्ति का प्रयोग किया । किन्तु चक्र के द्वारा देवी ने उस शक्ति को दो खण्ड कर दिये ॥१३॥

कोपाध्यातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः । आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥
 आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति । सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥
 ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवीं बाणौघैरपातयत् भूतले ॥१६॥
 तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥
 रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१८॥
 तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् । ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥
 पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च । समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥

तब निशुम्भ क्रोध से तिलमिला उठा और देवी का वध करने के लिए अपना शूल संभाला । किन्तु देवी ने उस शूल को मुक्के की मार से ही चूर्ण कर डाला ॥१४॥ तब उसने अपनी गदा को घुमाकर देवी पर आघात किया परन्तु वह गदा देवी के त्रिशूल से कटकर नष्ट हो गयी ॥१५॥ इसके अनन्तर वह दैत्य हाथ में फरसा लेकर देवी की ओर बढ़ा । तब देवी ने अपने बाणों की वृष्टि से उस दैत्य को धराशायी कर दिया ॥१६॥ अपने पराक्रमी भाई को धरती पर गिरते देख शुम्भ अत्यन्त क्रोधित होकर देवी को मारने के लिए दौड़ा ॥१७॥ अपनी आकाशव्यापी लम्बी अष्टभुजाओं से युक्त वह दैत्य रथ पर आयुधों से सुसज्जित होकर शोभित होने लगा ॥१८॥ उसे आते देखकर देवी ने अपना शंखनाद और धनुष की प्रत्यंचा द्वारा रणस्थल में घोर टंकार किया ॥१९॥ इसके पश्चात् सम्पूर्ण दैत्य-सेना के तेज को नष्ट करने वाले घण्टे के नाद से समस्त दिशाओं को गुंजायमान कर दिया ॥२०॥

ततः सिंहो महानादेस्त्याजितममहामदेः । पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥
 ततः काली समुत्पत्य गगनं क्षमामताडयत् । कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥
 अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह । तैः शब्दैरसुरास्त्रेषुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥
 दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिकायदा । तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥
 शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता-ज्वालातिभीषणा । आयान्ती वह्निकूटाभा सानिरस्ता महोत्कया ॥२५॥
 सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥

जिस सिंह की गर्जना को सुनकर बड़े-बड़े मदमत्त गजराज भी सहम जाते थे, उस देवी-वाहन सिंह ने अपनी दहाड़ से दशों दिशाओं को कँपा दिया ॥२१॥ तब काली ने आकाश में छलौंग लगाकर अपने दोनों हाथों से पृथ्वी पर प्रहार किया । उस क्रिया से ऐसा भयंकर शब्द उत्पन्न हुआ, जिससे पहले के सभी शब्द उसमें विलीन हो गये ॥२२॥ तब शिवदूती ने असुरों के लिए अशुभ अट्टहास करके सब राक्षसों का दिल दहला दिया, परन्तु इन सबसे शुम्भ को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥२३॥ उस समय देवी ने शुम्भ को लक्ष्य करके कहा-‘ओ दुरात्मन् ! खड़ा रह, खड़ा रह’, तब आकाशमार्ग में खड़े सभी देवगण देवी की जय-जयकार करने लगे ॥२४॥ तब शुम्भ ने ज्वालाओं से लपलपाती हुई अत्यन्त भीषण शक्ति चलायी । अग्निमयी पर्वत के सदृश उस भयंकर शक्ति को देवी ने बड़े भारी लुआठी से दूर कर दिया ॥२५॥ उस समय शुम्भ के सिंहनाद से त्रैलोक्य गूँज उठे । हे राजन् ! उसकी ध्वनि से ऐसा प्रतीत हुआ मानो वज्रपात हुआ हो, जिसमें अन्य सभी शब्द समा गये ॥२६॥

शुम्भमुक्ताञ्छरान् देवी शुम्भस्तत् प्रहिताञ्छरान्। चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७॥
 ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्। स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२८॥
 ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः। आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥
 पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः। चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥
 ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी। चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥
 ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्। अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥
 तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका। खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥

शुम्भ तथा देवी के परस्पर चलाये हुए बाणों को दोनों प्रतिद्वन्द्वियों ने अपने बाणों द्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर डाले ॥२७॥ तब क्रुद्ध होकर चण्डिका देवी ने शुम्भ पर अपने त्रिशूल से प्रहार किया। उस आघात को सहन न कर सकने के कारण शुम्भ दैत्य चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥२८॥ इतने में ही निशुम्भ की चेतना लौट आयी और उसने बाणों की वर्षा करके देवी, काली तथा उनके वाहन सिंह को घायल कर दिया ॥२९॥ फिर उस असुरराज ने अपने दस हजार हाथों को पैदा करके चक्रों के आघात से देवी को आच्छादित कर डाला ॥३०॥ तब असह्य पीड़ा निवारिणी देवी दुर्गा ने क्रुद्ध होकर अपने बाणों से उन चक्रों तथा बाणों को काट दिया ॥३१॥ तब देवी के इस अतुलनीय शौर्य को देखकर निशुम्भ अपने सैन्यदल के साथ चण्डिका का वध करने के उद्देश्य से हाथ में गदा लेकर बहुत वेग से उन पर झपटा ॥३२॥ देवी ने अपने तीक्ष्ण तलवार से उसकी गदा को काट दिया। गदा नष्ट होते ही उसने हाथ में शूल धारण कर लिया ॥३३॥

● शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥
 ● भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयाग्निः स्मृतोऽपरः । महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥
 ● तस्य निष्कामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः । शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद् भुवि ॥३६॥
 ● ततः सिंहश्च खादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् । असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
 ● कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचित्रेशुर्महासुराः । ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्य निराकृताः ॥३८॥
 ● माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथाऽपरे । वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३९॥
 ● खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः । वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥

● देवताओं के पीड़क शुम्भ को हाथ में शूल लेकर आते देख चण्डिका ने बड़े वेग से अपना शूल चलाकर उसके वक्ष को विद्ध कर दिया ॥३४॥ शूल से छाती छिद जाने पर, उसी के समान महाकाय दैत्य उसकी छाती से निकल कर 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ बोलने लगा ॥३५॥ उस निकलते हुए दैत्य की बात पर देवी अट्टहास कर उठीं और तलवार से उसका सिर काट गिराया, तब वह दैत्य भूमि पर गिरकर ढेर हो गया ॥३६॥ तत्पश्चात् सिंह अपनी दाढ़ों से उस दैत्य की गरदन चबाने लगा, वह दृश्य बहुत ही डरावना प्रतीत हो रहा था । उधर काली तथा शिवदूती ने भी दूसरे दानवों को खाना शुरु कर दिया ॥३७॥ कौमारी की शक्ति से विदारित होकर कितने ही महादानव नाश को प्राप्त हुए । ब्रह्माणी के मन्त्रपूत जल के द्वारा कितने ही दैत्य निष्प्रभ होकर भाग गये ॥३८॥ कितने ही दानव माहेश्वरी के त्रिशूल से छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गये । वाराही के शूथुन की मार से कितनों की हड्डी-पसली चूर-चूर हो गयी ॥३९॥ वैष्णवी ने अपने चक्र के प्रहार से राक्षसों के खण्ड-खण्ड कर डाले । ऐन्द्री के हाथ से चलाये हुए वज्र से आहत होकर कितनों को ही अपनी जान गंवानी पड़ी ॥४०॥

केचिद् विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्। भक्षिताश्चापरे काली-शिवदूती-मृगाधिपैः ॥ॐ॥ ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम् ४१, एवमादितः ॥५४३॥

दशमोऽध्यायः (१०)

ध्यानम्

‘ॐ’ उत्तप्तहेमरुचिरां रवि-चन्द्र-वह्नि-नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां कामेश्वरीं हृदि भजामिधृतेन्दुलेखाम्॥

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्। हन्यमानं बलं चैव शुम्भः कुब्धोऽब्रवीद् वचः ॥२॥

उस युद्ध में कुछ दानव नष्ट हो गये, कुछ भाग खड़े हुए तथा अगणित राक्षस काली, शिवदूती और सिंह के द्वारा काल-कवलित हो गये ॥४१॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

निशुम्भ-वध नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

ध्यान-जिनका वर्ण तप्त सोने के सदृश है, सूर्य, चन्द्र और अग्नि ही उनके तीन नेत्र हैं तथा वे अपने कर-कमलों में धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं, ऐसे अर्धचन्द्राकार शशिभूषित मस्तक वाली शिवशक्तिस्वरूपिणी भगवती कामेश्वरी देवी का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ ॥१॥

ऋषि ने कहा-॥१॥ हे राजन् ! अपने प्राणप्रिय भाई निशुम्भ को मृत तथा सारी सेना का विनाश देखकर शुम्भ ने क्रोधपूर्वक कहा-॥२॥

बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह । अन्यासां बलमाश्रित्य युद्धयसे यातिमानिनी ॥३॥

देव्युवाच ॥४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीयां का ममापरा । पश्येता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥५॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुखालयम् । तस्या देव्यास्तनौ जग्मुर्कैवासीत्तदाम्बिका ॥६॥

देव्युवाच ॥७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता । तत्संहतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरौ भव ॥८॥

ऋषिरुवाच ॥९॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य त्रीभयोः । पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥१०॥

दुष्टा दुर्गे ! तू अपने बल से गर्वित होकर मिथ्या अभिमान न कर । तू बड़ी स्वाभिमानिनी बनी फिरती है, किन्तु दूसरी स्त्रियों के बल पर लड़ाई लड़ रही है ॥३॥

तब देवी ने कहा-॥४॥ ओ दुष्ट ! मैं नितान्त अकेली ही हूँ । देख, ये सब मेरी ही विभूतियाँ हैं,

अतएव मुझमें ही सन्निहित हो रही हैं ॥५॥ तत्पश्चात् ब्रह्माणी आदि सम्पूर्ण देवियाँ अम्बिका देवी के

शरीर में विलीन हो गयीं । उस समय वहाँ पर केवल अम्बिका देवी ही विद्यमान रह गयीं ॥६॥ तब

देवी ने कहा-॥७॥ मैं अपनी विभूतियों से अनेक रूपों में यहाँ प्रकट हुई थी । अब उन सब आकारों

को मैंने समेट लिया है । अब मैं अकेली ही युद्ध के लिए सन्नद्ध हूँ । तुम भी स्थिर-भाव से तत्पर

हो जाओ ॥८॥ ऋषि ने कहा-॥९॥ सभी देवताओं और दानवों के समक्ष देवी और शुम्भ में घमासान

युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥१०॥

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः । तयोर्युद्धमभूद् भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥
 दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथास्त्रिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥
 मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी । बभञ्ज लीलयैवोग्रहङ्कारोच्चारणादिभिः ॥१३॥
 ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः । सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१४॥
 छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥
 ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् । अभ्यधावत् तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१६॥
 तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका । धनुर्मूकैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१७॥

उन दोनों प्रतिद्वन्द्वियों का युद्ध तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार तथा बाणों की वर्षा के कारण बहुत ही
 भयंकर प्रतीत होने लगा ॥११॥ उस समय देवी के छोड़े हुए सैकड़ों दिव्यास्त्रों को शुम्भ ने अपने अस्त्रों
 द्वारा काट डाला ॥१२॥ इसी प्रकार प्रत्युत्तर में देवी ने भी शुम्भ द्वारा निक्षेपास्त्रों को क्षणभर में ही
 अपने 'हुँकार' शब्द के उच्चारण मात्र से ही विनष्ट कर दिया ॥१३॥ तब उस दानव ने अपने सैकड़ों
 बाणों को चलाकर देवी को ढँक दिया । ऐसा देखकर कुपित देवी ने भी अपने बाण से उसके धनुष
 काट दिये ॥१४॥ धनुष कट जाने पर दैत्यराज ने हाथ में शक्ति उठा ली, किन्तु देवी ने अपने चक्र
 के द्वारा उस शक्ति को खण्डित कर दिया ॥१५॥ तदनन्तर उस दैत्य ने सैकड़ों चन्द्रमा की भाँति
 चमचमाती हुई ढाल तथा तलवार लेकर देवी पर आक्रमण कर दिया ॥१६॥ तब चण्डिका ने उसके
 आते-ही अपने तीक्ष्ण बाणों से उस चमचमाती हुई ढाल तथा तलवार को काट दिया ॥१७॥

हताशः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारीथः । जग्राह मुद्गरं धीरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१८॥
 चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः । तथापि सोऽभ्यधावत् तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥
 स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः । देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥
 तलप्रहारमभिहतो निपपात महीतले । स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥
 उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः । तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥
 नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् । चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥
 ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह । उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥

इसके बाद उस दानव के घोड़े और सारथि मृत्यु को प्राप्त हुए, धनुष तो उसका कट ही चुका था, फिर तो अब उसने अम्बिका-वध के लिए भयंकर मुद्गर हाथ में उठाया ॥१८॥ उस मुद्गर को भी देवी ने अपने बाणों से काट दिया, फिर भी वह दैत्य हिम्मत न हार कर केवल मुक्का बाँधकर द्रुत गति से देवी की ओर झपट पड़ा ॥१९॥ उस दैत्य ने देवी के हृदय में अपने मुक्के से प्रहार किया, और देवी ने भी उसकी छाती में एक थप्पड़ मारा ॥२०॥ देवी के इस थप्पड़ से वह भूमि पर गिर गया, किन्तु वह सँभलकर पुनः उठ खड़ा हुआ ॥२१॥ फिर वह एकाएक देवी पर उछल पड़ा और देवी को लेकर आकाश में उड़ चला । तब देवी आकाश में निराधार रह कर ही उसके साथ युद्ध करने लगीं ॥२२॥ उस समय आकाश में दोनों परस्पर युद्ध करने लगे । उनके इस युद्ध को देखकर ऋषि-मुनि विस्मित हो गये ॥२३॥ फिर अम्बिका ने शुम्भ के साथ दीर्घकाल तक युद्ध करने के पश्चात् उसे घुमाकर भूमि पर पटक दिया ॥२४॥

सक्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः । अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥
 तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥
 स गतासुः पपातोर्व्या देवीशूलाग्रविक्षतः । चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥
 ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलं चाऽभवन्नभः ॥२८॥
 उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्तेशमं ययुः । सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥
 ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वाललितं जगुः ॥३०॥

पृथ्वी पर गिरने के पश्चात् वह दैत्य पुनः देवी से युद्ध करने के लिए द्रुत गति से दौड़ पड़ा ॥२५॥
 तब दैत्यराज शुम्भ को आते देखकर देवी ने त्रिशूल से उसकी छाती वेध कर उसे भूतल पर गिरा दिया ॥२६॥ उस त्रिशूल के भयंकर आघात से आहत होकर उसके प्राण निकल गये और वह समस्त सागरों, द्वीपों तथा पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को आन्दोलित करता हुआ धरती पर आ गिरा ॥२७॥
 उस दुरात्मा की मृत्यु से समस्त विश्व आह्लादित हो गया, आकाश निर्मल दिखाई पड़ने लगा ॥२८॥
 उत्पातसूचक मेघ और उल्कापात सभी शान्त हो गये तथा नदियाँ भी अपने स्वाभाविक गति से प्रभावित होने लगीं ॥२९॥ उस दैत्य का क्षय होने से सभी देवों को अपार हर्ष हुआ और गन्धर्वादि मधुर गान करने लगे ॥३०॥

अवादयंस्तथैवाऽन्ये ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद् दिवाकरः ॥३१॥
जज्वलुश्चाऽग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ॐ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

उवाच ४. अर्धश्लोकः १. श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः ॥५७५॥

एकादशोऽध्यायः (११)

ध्यानम्

ॐ बालरवि-द्युतिमिन्दु-किरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ।

अन्य गन्धर्व वाद्य-वादन करने तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । पवित्र वायु बहने लगी, सूर्य की मलिनता दूर होकर प्रभा चमकने लगी ॥३१॥ अग्निशाला की बुझी हुई अग्नि प्रज्वलित हो गयी तथा समस्त दिशाओं में गूँजने वाले भीषण शब्द भी शान्त हो गये ॥३२॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

शुम्भ-वध नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

ध्यान-जिनके अंगों की कान्ति प्रातःकालीन बालसूर्य के सदृश है, चन्द्रमा के मुकुट से उनका मस्तक सुशोभित है, उभरे हुए स्तनों एवं तीन नेत्रों से युक्त, मुख पर मन्द हास्य, हाथों में वरद, अंकुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभित हो रहे हैं, ऐसी भुवनेश्वरी देवी का मैं चिन्तन करता हूँ ।

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
 दुर्गा कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशि - वक्त्राब्ज - विकाशिताशाः ॥२॥
 स देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
 स प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३॥
 ती आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
 अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥४॥

ऋषि ने कहा-॥१॥ देवी के द्वारा शुम्भ का वध होने पर इन्द्रादि देवता अग्निदेव को आगे करके कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे। उस समय उन देवगणों की मनोवांछा पूर्ण होने से उनके मुख की कान्ति चमक रही थी और उस प्रकाश से सम्पूर्ण दिशाएँ आलोकित हो रही थीं ॥२॥
 देवताओं ने कहा-शरणापन्न की पीड़ा निवारक देवि ! हमारे ऊपर प्रसन्न होइए। सम्पूर्ण जगत् की जननी ! प्रसन्न होओ। हे विश्वेश्वरि ! विश्व का त्राण करो। हे देवि ! तुम्हीं चराचर विश्व की अधिष्ठात्री हो ॥३॥ तुम्हीं इस जगत् की एकमात्र आधारभूता हो, क्योंकि पृथ्वी के रूप में तुम्हारी ही अवस्थिति है। हे देवि ! तुम्हारा पौरुष अलङ्घनीय है, तुम्हीं जल के रूप में स्थित होकर समस्त जगत् को तृप्त करती हो ॥४॥

● त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
 ● सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥
 ● विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
 ● त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपराः परोक्तिः ॥६॥
 ● सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी । त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥७॥
 ● सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते । स्वर्गापवर्गदि देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥८॥
 ● कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी ! विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥९॥

तुम अनन्त बलशालिनी वैष्णवी शक्ति हो । इस जगत् की कारणरूपिणी परा माया हो । हे देवि ! तुमने ही इस सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा है । तुम्हारी प्रसन्नता पाकर ही लोग पृथ्वी पर मोक्षलाभ करते हैं ॥५॥ हे देवि ! समस्त विद्याएँ तुम्हारे भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं । इस विश्व में जितनी भी नारियाँ हैं वे सब तुम्हारी ही प्रतिमूर्ति हैं । हे जगदम्बे ! तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है, तुम्हारी स्तुति किस प्रकार हो सकती है ? तुम सभी स्तवनीय पदार्थों से परे और परा वाणी हो ॥६॥ जब तुम्हीं सर्वस्वरूपा देवी होकर स्वर्ग तथा मोक्षदायिनी हो तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी । तुम्हारी स्तुति के लिए इससे बढ़कर दूसरी ओर कौन-सी बात हो सकती है ॥७॥
 समस्त प्राणियों के हृदय-प्रवेश में बुद्धिरूप बनकर निवास करने तथा स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली नारायणि देवि ! तुम्हें हमारा नमस्कार है ॥८॥ क्रमशः कला, काष्ठा आदि रूप में परिणाम की ओर ले जानेवाली तथा विश्व के उपसंहार में समर्थ नारायणी ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥९॥

● सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१०॥ ●
 ● सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥ ●
 दुर्गा शरणागत - दीनार्त - परित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥ ए
 स हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि । कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥ द
 प्ल त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनी । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥ शो
 स ती मयूर - कुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥ ष्या

नारायणि ! तुम सभी मांगलिक वस्तुओं को देनेवाली मंगलमयी हो । तुम्हीं कल्याणदायिनी
 शिवस्वरूपा हो । सभी पुरुषार्थों की प्रदानकर्त्री, शरणागतवत्सला, त्रिनयना एवं गौरी हो । तुम्हें मेरा
 प्रणाम है ॥१०॥ तुम सृजन, पालन और संहार की शक्तिभूता सनातनी देवी, गुणाधार तथा सर्वगुण
 सम्पन्न हो । हे नारायणी ! तुम्हें प्रणाम है ॥११॥ शरणागत असहायों, पीड़ितों आदि की रक्षा में तत्पर
 रहनेवाली तथा समस्त क्लेशनिवारिणी नारायणी देवि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥१२॥ हे नारायणि ! तुम
 ब्रह्माणी के वेश में हंसों के विमान पर बैठकर कुशमिश्रित जल का छिड़काव करती रहती हो, तुम्हें
 मेरा प्रणाम है ॥१३॥ माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं साँपों को धारण करनेवाली तथा बैल की
 पीठ पर बैठने वाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१४॥ मयूरों और मुरगों से आच्छादित
 महाशक्तिधारिणी कौमारी रूपवाली निष्पापे नारायणि ! तुम्हें मेरा अभिवादन है ॥१५॥

● शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-गृहीत-परमायुधे। प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥
 ● गृहीतोय - महाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे। वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
 ● नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे। त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
 ● किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले। वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
 ● शिवदूती - स्वरूपेण हतदैत्यमहाबले। घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥
 ● दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे। चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥
 ● लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे। महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥

शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुषरूप श्रेष्ठ अस्त्रों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्तिसम्पन्ना नारायणि ! तुम प्रसन्न हो और तुम्हें प्रणाम है ॥१६॥ हाथ में भयानक चक्र और दाढ़ों पर पृथ्वी को उठाये वाराही रूप वाली कल्याणमयी नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१७॥ दैत्यों के वध के लिए भयंकर नृसिंहरूप से उद्योग करनेवाली तथा त्रैलोक्य की रक्षा में तत्पर रहने वाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१८॥ मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करनेवाली, सहस्रों नेत्रों से युक्त होकर उद्दीप्त प्रतीत होने वाली, वृत्रासुर का वध करने वाली, इन्द्रशक्तिस्वरूपिणी नारायणि देवि ! तुम्हें प्रणाम है ॥१९॥ शिवदूती बनकर दानवों की असंख्य सेना का संहार करनेवाली भयानक रूप बनाने तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि ! तुम्हें प्रणाम है ॥२०॥ दाढ़ों के कारण विकट मुखवाली, मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपिणी नारायणि ! तुम्हें मेरा अभिवादन है ॥२१॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा अविद्यारूपा, नारायणि ! आपको

• मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि। नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
 • सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते। भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥
 • एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्। पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
 • ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुर-सूदनम्। त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६॥
 • हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्। सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥२७॥
 • असुरासृगवसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः। शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८॥

नमस्कार है ॥२२॥ मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, ऐश्वर्यरूपा, पार्वती, महाकाली, संयमपरायणी तथा सबकी
 अधिष्ठात्री नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥२३॥ सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सर्वशक्तिसम्पन्ना दिव्यरूपा
 दुर्गे देवि ! आप हमारी सभी भयों से रक्षा करें। तुम्हें नमस्कार है ॥२४॥ हे कात्यायनि ! तीन नेत्रों
 से विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सम्पूर्ण भयों से हमारा त्राण करें। तुम्हें हमारा प्रणाम है ॥२५॥
 भद्रकाली ! ज्वाला की लपटों के कारण विकट प्रतीत होने वाला अत्यन्त भीषण और समस्त दानवों
 का संहारक तुम्हारा त्रिशूल हमारी रक्षा करे। तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥२६॥ हे देवि ! सम्पूर्ण जगत्
 जिसकी ध्वनि से व्याप्त होकर दानवों को निष्प्रभ कर देता है, वह तुम्हारा घण्टा हम लोगों का कलुष
 (पाप) से उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार माता अपने पुत्रों की अशुभ कर्मों से रक्षा करती है ॥२७॥
 हे चण्डिके ! राक्षसों के रक्त और चर्बी से चर्चित तुम्हारे हाथों में शोभित होने वाला खड्ग हमारा मंगल
 करे। हे देवि ! तुम्हें हमारा प्रणाम है ॥२८॥

• रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
 • त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९॥
 • एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
 • रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥
 • विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
 • ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१॥
 • रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
 • दावानलो यत्र तथाऽब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२॥

हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नता से समस्त रोगों का शमन होता है, क्रुद्ध होने पर मनोऽभिलषित इच्छाओं का नाश हो जाता है । जो लोग तुम्हारे शरणापन्न हो गये हैं, उन पर विपत्ति की कभी छाया भी नहीं पड़ती । तुम्हारे शरणागत लोग अन्यो के शरणदाता बन जाते हैं ॥२९॥ हे देवि ! अम्बिके ! तुमने इन विधर्मी महादानवों का संहार अपने स्वरूप को विभिन्न भागों में विभाजित करके किया है, तुम्हारे सिवा अन्य कोई इसे नहीं कर सकता था ॥३०॥ विद्याओं में ज्ञान को उद्भासित करने वाले शास्त्रों में तथा वेदों में तुम्हारे अतिरिक्त और किसका वर्णन है । तुम्हारे सिवा दूसरी ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो इस जगत् को अज्ञानरूपी अन्धकार के कारण आच्छादित ममतारूपी गर्त में सदैव भटकती रहे ॥३१॥ जहाँ दैत्य, भयंकर विषधर साँप, शत्रु, लुटेरों की जमात और दावाग्नि हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में साथ रहकर तुम विश्व का निरन्तर कल्याण करती रहती हो ॥३२॥

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
 विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३॥
 देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते- नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
 पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४॥
 प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणी । त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५॥
 देव्युवाच ॥३६॥
 वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ । तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३७॥

हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्व की पालनकर्त्री, विश्वरूपा और सम्पूर्ण विश्व की धारयित्री हो । तुम भगवान् विश्वेश्वर के लिए भी वन्द्य हो । जो लोग भक्तिभाव से तुम्हारे सामने मस्तक टेकते हैं, वे निखिल विश्व के आश्रयदाता बन जाते हैं ॥३३॥ हे देवि ! प्रसन्न हो । असुरों का वध करके तुमने जिस प्रकार शीघ्र ही हमारा उद्धार किया है, उसी प्रकार सदैव हमें शत्रुभय से मुक्त कराओ । समस्त जगत का पाप-ताप नाश करें । उत्पात एवं पापों के परिणामस्वरूप उत्पन्न महामारी आदि उपद्रवों को शीघ्र ही निवारण करें ॥३४॥ विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवि ! हम तुम्हारे चरणों में नतमस्तक हुए हैं, हमारे पर प्रसन्न होओ । त्रिलोकवासियों की आराध्या परमेश्वरि ! सब लोगों को वर प्रदान करो ॥३५॥

देवी ने कहा-॥३६॥ देवो ! मैं वर देने के लिए तत्पर हूँ । तुम अपना ईप्सित वर मुझसे प्राप्त कर लो । संसार के कल्याणकारक वर को मैं अवश्य ही दूँगी ॥३७॥

देवा ऊचुः ॥३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल निवासिनी ॥४२॥
पुरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले । अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् । रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४४॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः । स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥

देवताओं ने कहा-॥३८॥ हे सर्वेश्वर ! तुम इसी प्रकार त्रैलोक्य की सम्पूर्ण विपत्तियों को निवारण करो और हमारे शत्रुओं का क्षय करती रहो ॥३९॥
ऐसा सुनकर देवी ने कहा-॥४०॥ वैवस्वत मन्वन्तर के अट्टादशवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य दानवों की उत्पत्ति होगी ॥४१॥ तब मैं नन्दगोप की पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतरित होकर विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उन दोनों दैत्यों का नाश करूँगी ॥४२॥ तदनन्तर मैं पृथ्वी पर भयंकर रूप से अवतार ग्रहण कर वैप्रचित्त नाम वाले असुरों का संहार करूँगी ॥४३॥ उन दैत्यों के भक्षणकाल में मेरे दाँत अनार पुष्प की तरह लाल हो जाएँगे ॥४४॥ तब स्वर्ग में देवता और मृत्युलोक में मनुष्यगण सदैव मेरा स्तवन करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' के नाम से सम्बोधित करेंगे ॥४५॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि। मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥
 ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्। कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४७॥
 ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः। भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४८॥
 शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि। तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४९॥
 दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति। पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥
 रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्। तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानप्रमूर्तयः ॥५१॥
 भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति। यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥५२॥
 तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्। त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥

तत्पश्चात् जब भूतल पर सौ वर्षों तक वृष्टि नहीं होगी और जल का अभाव रहेगा, तब मनुष्यों की स्तुति से मैं भूमि पर 'अयोनिजा' रूप में उत्पन्न होऊँगी ॥४६॥ उत्पत्ति के बाद शत नेत्रों से मुनियों को देखूँगी। तब मनुष्य 'शताक्षी' नाम से मेरा कीर्तन करेंगे ॥४७॥ देवताओं! उस समय मैं अपने शरीर से उत्पन्न शाकों द्वारा ही सम्पूर्ण जगत् का भरण-पोषण करूँगी। वर्षा न होने तक वे शाक द्वारा ही प्राण धारण करेंगे ॥४८॥ ऐसा करने पर पृथ्वी में 'शाकम्भरी' नाम से मेरी प्रसिद्धि होगी। उसी अवतार में मैं दुर्गा नामक महादैत्य का संहार करूँगी ॥४९॥ इससे मेरा नाम 'दुर्गा देवी' रूप में विख्यात होगा। फिर जब मैं भीमरूपा बनकर मुनियों की रक्षा के लिए हिमालयवासी दानवों का भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनिजन भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर मेरी स्तुति करेंगे ॥५०-५१॥ उस समय मेरा नाम 'भीमा देवी' के रूप में प्रसिद्ध होगा। जब अरुण नामक दानव त्रैलोक्य में उपद्रव करेगा ॥५२॥ तब मैं तीनों लोक के हितार्थ षट्पादयुक्त अगणित भौरों का रूप धारण कर उसका संहार करूँगी ॥५३॥

● भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः । इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥ ●

● तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ॐ ॥५५॥ ●

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०, एवम् ५५, एवमादितः ॥६३०॥

द्वादशोऽध्यायः (१२)

ध्यानम्

● ॐ विद्महे - समप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्भस्ताभिरासेविताम् । यः
● हस्तैश्चक्र-गदासि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे ॥ ●

● उस समय सब लोग मुझे 'भ्रामरी' के नाम से जानेंगे । इसी प्रकार मैं दानवी उत्पात होने पर
● अवतार लेकर शत्रुओं का वध करती रहूँगी ॥५४-५५॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

देवी-स्तुति नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

● ध्यान-मैं त्रिनयना दुर्गा देवी का ध्यान करता हूँ । उनके अंगों की शोभा विद्युत् के समान है । वे
● सिंह के कन्धों पर आसीन भयानक प्रतीत हो रही हैं । अनेक कन्याएँ हाथ में ढाल-तलवार लिये
● उनकी सेवा में खड़ी हैं । उन्होंने अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और
● तर्जनी मुद्रा धारण किये हैं । उनका स्वरूप तेजोमय अग्नि के तुल्य है तथा उनके मस्तक पर चन्द्रमा
● का मुकुट शोभित हो रहा है ।

‘ॐ’ देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः । तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥
 मधु-कैटभनाशं च महिषासुरघातनम् । कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥३॥
 अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः । श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४॥
 तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः । भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥५॥
 शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः । न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित् सम्भविष्यति ॥६॥
 तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७॥

देवी ने कहा-॥१॥ हे देवताओ ! जो कोई प्रतिदिन स्थिरचित्त से मेरा स्तवन इन स्तुतियों के द्वारा करेगा, उसकी सारी विपदाओं को मैं निश्चित रूप से दूर कर दूँगी ॥२॥ जो मधु-कैटभ का विनाश, महिषासुर का वध तथा शुम्भ-निशुम्भ के संहार के वर्णन का पाठ करेंगे ॥३॥ एवं अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथि को एकाग्र मन से भक्तिभाव से युक्त होकर मेरे इस उत्तम माहात्म्य को सुनेंगे ॥४॥ उन्हें पाप की छाया नहीं लगेगी । उन पर पापजनित बाधाएँ भी नहीं आयेंगी, उनके घर में कभी निर्धनता का राज्य नहीं रहेगा और न तो कभी उन्हें अपने प्रियजनों के वियोग का कष्ट ही उठाना होगा ॥५॥ इतना ही नहीं, वरन् उन्हें शत्रु, लुटेरे, राजा, शस्त्र, अग्नि तथा जलराशि से भी कभी भय उत्पन्न नहीं होगा ॥६॥ इसलिए सभी लोगों को शान्तभाव से भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य का पठन-पाठन और श्रवण-मनन करना चाहिए । यह परम कल्याणप्रद है ॥७॥

● उपसर्गनिशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्। तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥
 ● यत्रैतत् पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम। सदा न तद्विमोक्षयामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥९॥
 ● बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्यं महोत्सवे। सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥
 ● जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्। प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥११॥
 ● शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥
 ● सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धन-धान्य-सुतान्वितः। मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥
 ● श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः। पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥

मेरा माहात्म्य महामारी-जनित सभी उपद्रवों तथा दैहिक, दैविक और भौतिक—तीनों तापों को शमन करने वाला है ॥८॥ मेरे जिस मन्दिर में विधिपूर्वक प्रतिदिन इस माहात्म्य का पाठ होता है, वहाँ मेरा सदा निवास रहता है ॥९॥ बलि, पूजन, हवन तथा महोत्सव के अवसरों पर मेरे इस चरित्र का पूर्णरूपेण पाठ तथा श्रवण करना चाहिए ॥१०॥ कोई भी मनुष्य विधान को जानकर या अनजाने में ही मेरे उद्देश्य से जो बलि, पूजा या होमादि करेगा उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी ॥११॥ शरत्कालीन दुर्गापूजन के समय जो कोई भी इस माहात्म्य को भक्तिभाव से श्रवण करेगा, वह मेरे प्रसाद से सभी विपत्तियों से मुक्त होकर धन-धान्य और पुत्रादि से परिपूर्ण होगा-इसमें तिलभर भी संशय नहीं है ॥१२-१३॥ मेरे इस माहात्म्य, उत्पत्ति की सुन्दर गाथाएँ तथा युद्धकालीन पराक्रम के श्रवण-मात्र से ही मनुष्य भयरहित हो जाता है ॥१४॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते। नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१५॥
 शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने। ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१६॥
 उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः। दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१७॥
 बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्। संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१८॥
 दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्। रक्षो-भूत-पिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१९॥
 सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्। पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्ध-दीपैस्तथोत्तमैः ॥२०॥
 विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्। अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२१॥

मेरे माहात्म्य के सुनने वाले व्यक्तियों के शत्रु नष्ट होते, उन्हें कल्याणपद प्राप्त होता एवं उनके कुल प्रफुल्लित रहते हैं ॥१५॥ शान्तिकर्म में, अशुभ स्वप्न-दर्शन होने पर तथा ग्रहजनित भयंकर पीड़ा होने में, मेरे इस माहात्म्य को सुनना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करने से सभी बाधाएं तथा भयंकर ग्रह-पीड़ाएं शान्त होती हैं और मनुष्यों को अशुभ फलकारी स्वप्न शुभ फल देने वाला हो जाता है ॥१७॥ यह माहात्म्य बालग्रहों से आक्रान्त शिशुओं के लिए शान्तिदायक तथा मनुष्यों के संगठन में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न होने पर उनमें मित्रता स्थापित कराने वाला सिद्ध होता है ॥१८॥ इस माहात्म्य से सम्पूर्ण दुराचारियों के बल का क्षय होता है। इसके पाठ से दानवों, भूतों तथा पिशाचों का नाश होता है ॥१९॥ मेरा ग्रह माहात्म्य मेरे सान्निध्य की उपलब्धि कराने वाला है। उपासकों के द्वारा साल भर तक पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि श्रेष्ठ सामग्रियों द्वारा पूजन करने, ब्राह्मणों को भोजन कराने, हवन करने, प्रतिदिन अभिषेक करने, नाना प्रकार के भोगों का अर्पण करने तथा

प्रीतिमें क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते । श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥२२॥
 रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम । युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदेत्यनिबर्हणम् ॥२३॥
 तस्मिञ्छ्रुते वैरि कृतं भयं पुंसां न जायते । युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥२४॥
 ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् । अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥२५॥
 दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः । सिंह-व्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६॥
 राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा । आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥
 पतस्तु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे । सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥२८॥

दान देने से मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी इस उत्तम चरित्र का एक बार श्रवण करने से होती है । इस माहात्म्य को सुनने से पाप-पुंजों का क्षय एवं आरोग्य-लाभ होता है ॥२०-२२॥ मेरी उत्पत्ति का कीर्तन करने से समस्त भूतों से रक्षा होती है तथा मेरा युद्ध-सम्बन्धी चरित्र दुष्ट दानवों का संहारक है ॥२३॥ इसके श्रवण-मात्र से ही मनुष्य निर्भय हो जाता है । हे-देवताओं ! तुमने और महर्षियों ने मेरी जो स्तुतियाँ की हैं ॥२४॥ तथा ब्रह्माजी द्वारा की हुई स्तुतियाँ सभी कल्याणकारी बुद्धि देती हैं । वन में, सुनसान स्थल में या दावाग्नि से घिर आने पर, ॥२५॥ जनहीन स्थान में, लुटेरों के चक्कर में आ जाने पर, शत्रुओं द्वारा बन्दी होने पर, अथवा वन में सिंह, व्याघ्र, जंगली हस्तियों के पीछा करने पर, ॥२६॥ राजाज्ञा से बन्धन या वधस्थल पर ले जाने के समय अथवा समुद्र में यात्रा करते समय तूफान के कारण नाव डगमगाने पर, ॥२७॥ भयंकर युद्ध में शस्त्रों का आघात होने, वेदना से पीड़ित होने, इतना ही नहीं, वरन् समस्त भीषण बाधाओं के सामने आने पर, ॥२८॥

स्मरन् ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात्। मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥२९॥
 दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥३२॥

पश्यतामेव देवानां तत्रैवाऽन्तरधीयत। तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥
 यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः। दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥
 जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे। निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥
 एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः। सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥

जो कोई इस चरित्र का स्मरण करता है, वह व्यक्ति संकट को पार हो जाता है। मेरे प्रभाव से सिंह आदि हिंसक जन्तु नाश प्राप्त होते तथा लुटेरे एवं शत्रु भी मेरे चरित्र का स्मरण करने वाले लोगों से दूर भाग जाते हैं ॥२९-३०॥ ऋषि ने कहा-॥३१॥ ऐसा कहकर सब देवों के देखते-देखते ही पराक्रम वाली भगवती चण्डिका वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब सभी देवता शत्रु के मारे जाने से यज्ञांश का उपभोग पहले की तरह निर्भय होकर करने लगे और अपने अधिकार का उपयोग करने लगे। महाबलवान् दैत्य शुम्भ-निशुम्भ की मृत्यु के अनन्तर शेष बचे-खुचे दैत्य पाताललोक को चले गये ॥३२-३५॥ हे राजन्! इस प्रकार भगवती अम्बिका शाश्वत और नित्य होते हुए भी बारम्बार अवतरित होकर भू-भार हरण करके संसार का रक्षण करती हैं ॥३६॥

तथैतन्मोहाते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते। सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥
 व्याप्तं तथैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर। महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
 सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा। स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९॥
 भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे। सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥
 स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप-गन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥३७॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

उवाच २, अर्धश्लोकौ, २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ॥६७१॥

वे ही इस विश्व को मोहित करतीं, जगत् की सृष्टि करतीं तथा प्रार्थना करने पर सन्तुष्ट हो विज्ञान
 और स्मृति प्रदान करती हैं ॥३७॥ हे राजन्! महाप्रलय काल में महामारी स्वरूपिणी वे महाकाली ही
 इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहती हैं ॥३८॥ समय-समय पर वे ही महामारी होतीं और वे ही स्वयं
 अजन्मा होते हुए भी सृष्टि के रूप में उत्पन्न होती हैं। वे सनातनी देवी ही समय के अनुरूप समस्त
 जीवों की रक्षा करती हैं ॥३९॥ मनुष्यों के उत्थानकाल में वे ही गृह में लक्ष्मी के रूप में निवास करतीं
 और उन्नति प्रदान करती हैं और फिर वे ही पतनकाल में निर्धनता के वेश में विनाश का कारण बनती
 हैं ॥४०॥ पुष्प, धूप, गन्ध आदि से विधिवत् पूजन करके उनका स्तवन करने से वे धन-धान्य, पुत्र,
 सद्बुद्धि तथा उत्तम गति को प्रदान करती हैं ॥४१॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

फल-स्तुति नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः (१३)

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशा-ऽङ्कुश-वरा-भीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥१॥

एतत् ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्। एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥२॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया। तथा त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥३॥
मोहान्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे। तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥४॥

ध्यान-जिनके शरीर की कान्ति बालकालीन सूर्य की भाँति है, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र तथा जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय की मुद्रा धारण करती हैं ऐसी उन शिवादेवी का मैं ध्यान करता हूँ।

ऋषि ने कहा-॥१॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे देवी के श्रेष्ठ माहात्म्य का कथन किया। इस जगत् की धारयित्री देवी का ऐसा ही प्रभाव है ॥२॥ उन्हीं के द्वारा विद्या अर्थात् ज्ञान का उदय होता है। भगवान् विष्णु की मायास्वरूपा उन भगवती द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्य विवेकशील लोग मुग्ध होते हैं, इस समय भी मोहित हुए हैं एवं आगे भी इसी प्रकार होते रहेंगे। महाराज ! तुम उन्हीं परमेश्वरी का शरण ग्रहण करो ॥३-४॥

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥७॥

प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् । निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥८॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने । संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥९॥

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् । तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥१०॥

अर्हणांचक्रतुस्तस्याः पुष्प-धूपान्नि-तर्पणैः । निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥११॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् । एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१२॥

अपने उपासकों को वे भोग, स्वर्ग तथा मुक्तिलाभ कराती हैं ॥५॥

मार्कण्डेयमुनि ने कहा-॥६॥ मेधामुनि से ऐसा वचन सुनकर राजा सुरथ ने उत्तम व्रतधारी उन महाभाग महर्षि को नमस्कार किया । वे अत्यन्त ममता तथा राजभ्रष्ट होने के कारण बहुत क्षुब्ध हो उठे थे ॥७-८॥ महामुने ! इसलिए विरक्ति के कारण वे राजा तथा वैश्य तत्क्षण तपस्या के लिये चले गये और वे जगदम्बा के दर्शनार्थ नदी के तट पर तपसाधन करने लगे ॥९॥ वे वैश्य देवीसूक्त का उत्तम जप करते हुए तपस्या में लीन हुए । ये दोनों ही नदी-तीर पर देवी की मिट्टी की प्रतिमा स्थापित करके उनकी पुष्प, धूप और हवन आदि के द्वारा उपासना करने लगे । उन्होंने सर्वप्रथम अपने आहार की मात्रा कम कर दी, तदनन्तर निराहार रहकर एकाग्रचित्त से देवी का चिन्तन करने लगे ॥१०-११॥ वे दोनों अपने शरीर के रक्त से सिंचित बलि चढ़ाते हुए निरन्तर तीन वर्षों तक संयमी होकर उपासना करते रहे ॥१२॥

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥१३॥

देव्युवाच ॥१४॥

यत्प्राथ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन । मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥१६॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्य न्यजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१७॥

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः । ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१८॥

देव्युवाच ॥१९॥

स्वल्यैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥२०॥

उन लोगों की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर जगत् की धारयित्री चण्डिका देवी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा ॥१३॥ देवी ने कहा-॥१४॥ राजन् ! अपने कुल को प्रमुदित करने वाले वैश्य ! तुम लोगों की जो मनोवांछा हो, वह मुझसे माँग लो । मैं तुम लोगों से प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हें सब कुछ दे सकूँगी ॥१५॥ मार्कण्डेयजी बोले-॥१६॥ देवी की बात सुनकर राजा ने दूसरे जन्म में अक्षय राज्य प्राप्त करने का वर माँगा तथा इस जन्म में भी शत्रुओं की समस्त सेना को बलपूर्वक पराजित कर पुनः राज्य पर अधिकार जमा लेने का वरदान माँगा ॥१७॥ वैश्य अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य था, उसका मन सांसारिक विषयों से विरक्त हो चुका था, इसलिये उस समय उस वैश्य ने ममता और अन्धकार मिटाने वाले ज्ञान की प्राप्ति का वर माँग लिया ॥१८॥

तब देवी ने कहा-॥१९॥ हे राजन् ! तुम अल्पकाल में ही शत्रुओं को जीतकर अपना राज्य पा

हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद् विवस्वतः ॥२२॥

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥२७॥

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता। एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥

लोगे। अब वहाँ पर तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥२०-२१॥

मृत्यु के पश्चात् तुम सूर्य के अंश से जन्म लेकर इस पृथ्वी पर सावर्णिक मनु के नाम से प्रसिद्ध होओगे ॥२२-२३॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमने जिस वर को पाने की मुझसे इच्छा जतायी है, उसे भी मैं देती हूँ। तुम्हें मोक्षप्राप्ति के लिए ज्ञान की उपलब्धि होगी ॥२४-२५॥

मार्कण्डेयजी ने कहा-॥२६॥ उन दोनों को इस प्रकार मनोभिलषित वरदान देकर तथा उनके द्वारा अपनी स्तुति श्रवण कर देवी अम्बिका वहीं अन्तर्निहित हो गयीं। देवी से इस प्रकार का वरदान पाकर

सूर्यज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥२९॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः । सूर्यज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भवितामनुः ॥क्लींॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिक मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ॥७००॥

समस्ता उवाच-मन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि ६६॥

उत्तरन्यासः

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।

शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ॥हृदयाय नमः ।

क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ नामक राजा सूर्य के अंश से जन्म ग्रहण करके सावर्णि नामक मनु होंगे ॥२७-२९॥

इसे प्रकार आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त शास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' हिन्दी व्याख्या में

मार्कण्डेयपुराण के सावर्णिक मन्वन्तर-कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में वर्णित

सुरथ तथा वैश्य की वरप्रदान नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

उपयुक्त विधि से दुर्गासप्तशती का पाठ पूर्ण कर हृदयादिन्यास और ध्यान कर देवीसूक्त का पाठ करें ।

हृदयादिन्यास—'खड्गिनी शूलिनी घोरा०' से लेकर 'दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते' पर्यन्त एक-एक श्लोक

पढ़ते हुए हृदयादि षडंगन्यास करें ।

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
 घण्टास्वनेन नः पाहि चाप-ज्या-निःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ।
 ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
 भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट् ।
 ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
 यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम् ।
 ॐ खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
 करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् ।
 ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
 भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट् ।

इत्युत्तरन्यासः ।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्याम-समप्रभां मृगपति-स्कन्ध-स्थितां भीषणां कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्भस्ताभिरासेविताम् ।
 हस्तैश्चक्र-गदासि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

१५६

ध्यान-तत्पश्चात् 'विद्युद्याम-समप्रभां' श्लोक पढ़ कर भगवती दुर्गा का ध्यान कर देवीसूक्त का
 पाठ करें ।

ऋग्वेदोक्तं देवी-सूक्तम्

विनियोगः

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः, सर्वगतः परमात्मा देवता,
दुर्गा द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप्छन्दः देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

सिंहस्था शशिशेखरा - मरकत - प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्र-धनुः - शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गद - हार - कङ्कण - रणत् - काञ्ची-रणन्नूपुरा-
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला ॥
ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुतविश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नीअहमश्विनोभा ॥ १ ॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरित्यात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
मया सो अन्नमन्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
 यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥
 अहं रुद्राय धनुरो तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
 अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥६॥
 अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
 ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥
 अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
 परो दिवा पर एनां पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥८॥

(ऋ० मं० १०, अ० ७, सूक्त १२५, मं० १-८,)

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ।

तन्त्रोक्तं देवी-सूक्तम्^१

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥१॥
 रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥२॥
 कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥३॥
 दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥

१. देवीसूक्त की हिन्दी टीका पाँचवें अध्याय के श्लोक ९-८२ में देखिये।

●	अतिसौम्याति-रौद्राद्यै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥	●
दु	या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥	●
र्गा	या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥	●
स	या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥९॥	●
प्त	या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥	●
स	या देवी सर्वभूतेषु पुच्छारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥	●
ती	या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥	●
●	या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥	●

देवी

सुक्तम्

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥
 या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
 या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥
 इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥२७॥
 चित्तिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
 स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्ट-संश्रयात् तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
 करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥
 या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-रस्माभिराशा च सुरैर्नमस्यते ।
 या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः ॥३०॥

इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ।

नवार्णमन्त्र-जपः

नवार्णमन्त्र - जपः

ततो देवीसूक्तस्य पाठं कृत्वाऽष्टोत्तरशतसंख्याकं 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति नवार्णमन्त्रं जपेत् । तत्पश्चात्—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवित्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

इति पठित्वा, देव्या वामहस्ते जपं निवेदयेत् । ततः सप्तशती- रहस्यत्रयं पठेत् ।

प्राधानिकं रहस्यम्

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्-छन्दः, महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवता, यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

तदनन्तर देवीसूक्त का पाठ कर एक माला 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवार्ण मन्त्र का जप करे ।

पश्चात् 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' श्लोक पढ़कर देवी के बायें हाथ में जप निवेदन कर सप्तशती के रहस्यत्रय का पाठ करे । कुछ लोग रहस्यत्रय का पाठ नहीं भी कर सकते हैं ।

विनियोग— सप्तशती के इन तीनों रहस्यों के ऋषि नारायण, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती हैं । शास्त्रों में कथित फल की उपलब्धि के निमित्त जपकाल में इनका विनियोग किया जाता है ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मेचण्डिकायास्त्वयोदिताः। एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥१॥

आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज। विधिना ब्रूहि सकलं यथावत् प्रणतस्य मे ॥२॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते। भक्तोऽसीति न मे किञ्चित् तवावाच्यं नराधिप ॥३॥

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी। लक्ष्या-लक्ष्य-स्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥४॥

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती। नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि ॥५॥

राजा ने कहा—भगवन् ! आपने चण्डिका के अवतारों की कथा तो मुझे सुनायी। हे ब्रह्मन् ! अब उनके अवतारों की प्रधान प्रकृति का विवेचन कीजिए ॥१॥ हे विप्रवर ! मैं आपके चरणों में नतमस्तक हुआ हूँ। मुझे देवी के किस स्वरूप की किस विधि से उपासना करनी चाहिए, यह सब आप यथार्थ रूप से बतलाने की कृपा करें ॥२॥

ऋषि ने कहा—राजन् ! यह रहस्य अत्यन्त गोप्य है। इस रहस्य का वर्णन किसी से नहीं करना चाहिए। किन्तु तुम मेरे भक्त हो इसलिए भक्तों के लिए मेरे पास गोपनीय कुछ भी नहीं है ॥३॥ त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी देवी ही सबका मूल कारण हैं, वे ही समस्त विश्व को दृश्य तथा अदृश्य रूप से व्याप्त करके स्थित हैं ॥४॥ हे राजन् ! वे अपने चारों भुजाओं में बिजौरे का फल, गदा, ढाल, पानपात्र, मस्तक पर नाग, लिंग तथा योनि आदि वस्तुओं को धारण करती हैं ॥५॥

● तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा । शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥६॥
● शून्य तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी । बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥७॥
● सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना । विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥८॥
● खड्गपात्र-शिरः खेटेरलङ्कृत-चतुर्भुजा । कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणां हि शिरः स्रजम् ॥९॥
● सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा । नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥१०॥
● तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् । ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥११॥

उनकी कान्ति तप्त स्वर्ण के समान है तथा उनके आभूषण भी तप्त स्वर्ण के ही निर्मित हैं । उन्होंने अपने तेज से इस शून्य जगत् को परिपूर्ण कर रखा है ॥६॥ इस समस्त विश्व को शून्य देखकर केवल तमोगुणरूप उपाधि के द्वारा परमेश्वरी महालक्ष्मी ने एक अन्य श्रेष्ठ रूप धारण कर रखा है ॥७॥ उस रूप का प्रादुर्भाव एक नारी के रूप में हुआ, जिसके शरीर की आभा निखरे हुए कज्जल की तरह काले रंग की थी । उसका श्रेष्ठ मुख दाढ़ों से शोभायमान हो रहा था । नेत्र बहुत ही विशाल और कटि क्षीण थी ॥८॥ उसकी चार भुजाओं में ढाल, तलवार, प्याला और खण्डित मुण्ड सुशोभित था । उनके वक्षस्थल पर धड़ (कबन्ध) की तथा मस्तक पर मुण्डों की मालाएँ पड़ी हुई थीं ॥९॥ इस रूप में उत्पन्न नारीश्रेष्ठ तामसी देवी ने महालक्ष्मी देवी से कहा—‘माताजी ! आपको मेरा प्रणाम है । मुझे आप मेरा नाम और कार्य बताइए’ ? ॥१०॥ तब नारियों में श्रेष्ठ उस तामसी देवी से महालक्ष्मी ने कहा—‘मैं तुम्हारा नामकरण करती हूँ और तुम्हारे कार्यों को भी बतलाती हूँ ॥११॥

महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा । निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिदुरत्यया ॥१२॥
 इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः । एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥१३॥
 तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप । सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥१४॥
 अक्षमाला-ङ्कुशधरा वीणा-पुस्तकधारिणी । सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥१५॥
 महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती । आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥१६॥
 अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् । युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥१७॥
 इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् । हिरण्यगर्भैरुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥१८॥

महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, एकवीरा, कालरात्रि तथा दुरत्यया ॥१२॥ ये ही
 तुम्हारे नाम हैं, तुम्हारे ये नाम कर्मों के द्वारा ही लोकों में अभिहित होंगे । इन नामों के द्वारा जो कोई
 तुम्हारे कर्मों को जानकर तुम्हारा पाठ करता है, वह सुखी होता है' ॥१३॥ हे राजन् ! महाकाली से
 महालक्ष्मी ने ऐसा कहकर अत्यन्त शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न होकर अन्य रूप धारण किया, जो चन्द्र के
 समान गौर वर्ण का था ॥१४॥ उस श्रेष्ठ नारी के हाथ में अक्षमाला, अंकुश, वीणा तथा पुस्तक थी ।
 महालक्ष्मी ने उसका भी नामकरण किया ॥१५॥ महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती,
 आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धि की अधिष्ठात्री)-इस प्रकार से तुम्हारे नाम
 होंगे ॥१६॥ इसके पश्चात् महाकाली तथा महासरस्वती से महालक्ष्मी ने कहा-‘देवियो ! तुम दोनों
 अपने-अपने गुणों के अनुरूप स्त्री-पुरुष के युग्म पैदा करो’ ॥१७॥ महालक्ष्मी ने उन दोनों से ऐसा
 कहकर स्वयं ही स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा उत्पन्न किया । वे दोनों ही निर्मल ज्ञान से सम्पन्न, सुन्दर तथा
 कमलासन पर विराज-रहे थे । उस युग्म में एक स्त्री और एक पुरुष था ॥१८॥

● ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् । श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥१९॥
 ● महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह । एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥२०॥
 ● नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् । जनयामास पुरुषं महाकालीसितां स्त्रियम् ॥२१॥
 ● सरस्वती स्त्रियं गौरी कृष्णं च पुरुषं नृप । जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥२२॥
 ● विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः । उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥२३॥
 ● एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे । चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥२४॥

तदनन्तर महालक्ष्मी माता ने पुरुष को ब्रह्मन् ! विधे ! विरंचि तथा धातः !—इस नाम से सम्बोधित किया और स्त्री को श्री ! पद्मा ! कमला ! लक्ष्मी !—इत्यादि नामों से विभूषित किया ॥१९॥ इसके पश्चात् महाकाली तथा महासरस्वती ने भी एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया । इन जोड़ों के रूप तथा नाम का कथन मैं तुमसे करता हूँ ॥२०॥ महाकाली ने नील चिह्नयुक्त कण्ठ, लाल बाहु, श्वेत शरीर और मस्तक पर चन्द्रमौलि धारण करने वाले पुरुष तथा गौर वर्ण की स्त्री को उत्पन्न किया ॥२१॥ रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन के नाम से विख्यात हुआ तथा स्त्री के त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा—ये नाम प्रसिद्ध हुए ॥२२॥ हे राजन् ! गौरवर्ण की स्त्री और श्यामवर्ण के पुरुष को महासरस्वती ने प्रकट किया । उन दोनों के नाम भी तुम्हें मैं बतला देता हूँ ॥२३॥ उनमें श्यामवर्ण पुरुष के नाम विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन हुए तथा गौरांगी स्त्री उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा—इन नामों से विख्यात हुई ॥२४॥ इस प्रकार तीनों युवतियाँ ही तत्क्षण पुरुष रूप में परिवर्तित हो गयीं । इसके रहस्य को ज्ञानचक्षु वाले ही जान सकते हैं, किन्तु अज्ञानी लोग इसे नहीं समझ सकते ॥२५॥

● ब्रह्माणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् । रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥२६॥
 ● स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् । विभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥२७॥
 ● अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप । महाभूतात्मकं सर्वजगत्-स्थावर-जङ्गमम् ॥२८॥
 ● पुषोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः । संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥२९॥
 ● महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी । निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥३०॥
 ● नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥३१॥

इति प्राधानिकं रहस्यं समाप्तम् ।

हे राजन् ! महालक्ष्मी ने त्रयी विद्यारूप सरस्वती को ब्रह्मा के लिए पत्नी रूप में अर्पित कर दिया,
 रुद्र को वरदात्री गौरी तथा भगवान् वासुदेव को लक्ष्मी को दे दिया ॥२६॥ इस प्रकार सरस्वती के साथ
 युक्त होकर ब्रह्माजी ने इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और परम पराक्रमशाली भगवान् रुद्र ने गौरी के
 साथ मिलित होकर उसका भेदन किया ॥२७॥ राजन् ! उस ब्रह्माण्ड में प्रधान (महत्तत्त्व) आदि
 कार्यसमूह-पंचमहाभूतों से युक्त सम्पूर्ण स्थावर-जंगम रूप इस जगत् की उत्पत्ति हुई ॥२८॥ तदनन्तर
 लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु ने उस जगत् का भरण-पोषण किया और प्रलयकाल में गौरी के साथ
 शिव ने उस समस्त विश्व का संहार कर दिया ॥२९॥ हे महाराज ! महालक्ष्मी ही सर्वसत्त्वमयी तथा
 सब तत्त्वों की अधिष्ठात्री हैं । वे ही निर्गुण और सगुण रूप में नाना प्रकार के नाम धारण करती
 हैं ॥३०॥ सगुणवाचक सत्य, ज्ञान, चित्, महामाया आदि नाम-भेदों से इस महालक्ष्मी का निरूपण
 करना उचित है । केवल महालक्ष्मी मात्र नाम से ही या अन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाण के द्वारा उनका वर्णन
 नहीं किया जा सकता ॥३१॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका में प्राधानिक रहस्य समाप्त ।

वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी यात्रिघोदिता। सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥१॥
 योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा। मधु-कैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥२॥
 दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालया राजमाना त्रिशल्लोचनमालया ॥३॥
 स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप। रूप-सौभाग्य-कान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥४॥
 खड्ग-बाण-गदा-शूल-चक्र-शङ्ख-भुशुण्डिभृत्। परिधं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्बुधिरं दधौ ॥५॥

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! महालक्ष्मी के प्रथम जो सत्त्वगुण, त्रिगुणमयी, तामसी आदि भेद से तीन रूप वर्णित किये गये हैं, वे ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा, भगवती आदि नामों से अभिहित हैं ॥१॥ तमोगुणी महाकाली ही विष्णु भगवान् की योगनिद्रा कही गयी हैं। ब्रह्माजी ने मधु, कैटभ वध के लिए जिनकी स्तुति की थी, उन्हीं देवी का नाम महाकाली है ॥२॥ वे दस मुखों, दस भुजाओं एवं दस पादों से युक्त हैं। उनका वर्ण काजल के समान है तथा वे तीस नेत्रों की विशाल पंक्ति से शोभायमान हैं ॥३॥ हे राजन् ! दाँतों और दाढ़ों के चमकने के कारण उनका रूप भीषण होने पर भी वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महत् सम्पत्ति की देने वाली हैं ॥४॥ उनके हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि, परिध, धनुष तथा रक्त टपकता हुआ भग्न मुण्ड शोभित रहता है ॥५॥

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया । आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥६॥
 सवदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा । त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥७॥
 श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला । रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरु रुन्मदा ॥८॥
 सुचित्रजघना चित्र-माल्याम्बर-विभूषणा । चित्रानुलेपना कान्ति-रूप-सौभाग्यशालिनी ॥९॥
 अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती । आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात् ॥१०॥
 अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा । चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥११॥

भगवान् विष्णु की महाकाली ही दुरूह माया हैं । इनकी उपासना करने पर उपासक चराचर विश्व
 को अपने अधीनस्थ कर लेता है ॥६॥ समस्त देवों के अंगों से जिनकी उत्पत्ति हुई थी, वे असीम
 कान्तिमयी साक्षात् महालक्ष्मी ही हैं । वे ही त्रिगुणमयी प्रकृति तथा महिषासुरमर्दिनी हैं ॥७॥ उनका
 मुखमण्डल गौरवर्ण, भुजाएँ श्याम-वर्ण, स्तनप्रदेश अत्यधिक श्वेत वर्ण, कटिप्रदेश और चरण लोहित
 वर्ण तथा जाँघें और पिंडलियाँ नील वर्ण की हैं । विश्व में अजेय होने के कारण उनमें अपने पराक्रम
 का गर्व भी है ॥८॥ कटि का अग्रभाग विविध वर्णों के वस्त्रों से आच्छन्न होने से वह अत्यन्त मनोहारी
 एवं विचित्र दीख पड़ती हैं । उनकी माला, वस्त्र, आभरण तथा अंगलेपन की सभी वस्तुएँ विचित्र ही
 हैं । वे रूप, लावण्य और सौभाग्य से विभूषित हैं ॥९॥ उनकी भुजाएँ अगणित होने पर भी उन्हें
 अष्टादश भुजाओं वाली मानकर पूजा करना उचित है । अब उनके दक्षिण हस्त के निम्नांग से लेकर
 वामपार्श्व के निचले हाथों में जो-जो अस्त्र सुशोभित हैं, उनका वर्णन किया जा रहा है ॥१०॥
 अक्षमाला, पद्म, बाण, तलवार, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, शंख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड,

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः । अलङ्कृत-भुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥१२॥
 सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप । पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥१३॥
 गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया । साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१४॥
 दधौचाष्टभुजा बाण-मुसले शूल-चक्रभृत् । शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥१५॥
 एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति । निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१६॥
 इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव । उपासनां जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥१७॥
 महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती । दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥१८॥

ढाल, धनुष, पानपात्र और कमण्डलु—इन उपर्युक्त अस्त्रों को वे धारण करने वाली हैं । वे कमलासन पर आसीन हैं, सर्वदेवमयी तथा सभी प्राणियों की ईश्वरी हैं । हे राजन् ! जो इन महालक्ष्मी देवी की आराधना करता है, वह समस्त लोकों तथा देवों का भी स्वामी बन जाता है ॥११-१३॥ पार्वतीजी के शरीर से जो एकमात्र सत्त्वगुणी होकर उत्पन्न हुई थीं, जिन्होंने शुम्भ नामक दैत्य का वध किया था, उन्हें साक्षात् सरस्वती कहा गया है ॥१४॥ हे पृथ्वीपते ! उनकी आठ भुजाएँ हैं तथा उनके हाथों में क्रमशः बाण, मूसल, शूल, चक्र, शंख, घण्टा, हल और धनुष सुशोभित होता है ॥१५॥ निशुम्भमर्दिनी तथा शुम्भासुर-संहारिणी सरस्वती देवी की भक्ति-भावयुक्त होकर पूजा करने पर प्राणी को सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥१६॥ हे राजन् ! मैंने तुम्हें महाकाली आदि तीनों मूर्तियों के स्वरूप बताये, अब जगज्जननी महालक्ष्मी तथा इन महाकाली आदि तीनों मूर्तियों की भिन्न-भिन्न उपासना विधि कहता हूँ, उसे सुनो ॥१७॥ जब महालक्ष्मी की पूजा करनी हो तो उन्हें मध्यभाग में स्थापित

● विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे । वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥१९॥
 ● अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना । दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥२०॥
 ● अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप । दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥२१॥
 ● काल-मृत्यु च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये । यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥२२॥
 ● नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्र-विनायकौ । नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२३॥

स ती करे । तदनन्तर उनके दक्षिण और वाम पार्श्व में क्रमशः महाकाली तथा महासरस्वती की प्रतिमा स्थापित कर पूजन करना चाहिए और पिछले भाग में तीनों युगल देवताओं की स्थापना कर पूजा करना उचित है ॥१८॥ महालक्ष्मी के ठीक पीछे की ओर मध्यभाग में सरस्वती के साथ ब्रह्मा की पूजा करे । उनके दक्षिण भाग में गौरी के साथ रुद्र की तथा वाम पार्श्व में लक्ष्मी के साथ विष्णु का पूजन करे । महालक्ष्मी आदि तीनों देवियों के सामने निम्नलिखित तीन देवियों की भी पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ मध्य में स्थित महालक्ष्मी के आगे बीच के भाग में अष्टारह भुजाओं वाली महालक्ष्मी की पूजा करे । उनके वाम पार्श्व में दशमुखी महाकाली तथा दक्षिण भाग में अष्टभुजी महासरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥२०॥ हे राजन् ! सभी अनिष्टों की शान्ति के निमित्त जब अष्टादश भुजाओं वाली महालक्ष्मी के दशमुखी काली या अष्टभुजा सरस्वती का पूजन करना हो तब इनके दाहिने पार्श्व में काल की तथा बायें पार्श्व में मृत्युदेव का विधिवत् पूजन करना अनिवार्य है । जब शुम्भासुर-संहारिणी अष्टभुजा देवी की पूजा करनी हो तब साथ ही उनकी नौ शक्तियों एवं दाहिने भाग में रुद्र तथा वाम भाग में गणपति का पूजन करना भी उचित है । 'नमो देव्यै०' इस स्तोत्र मन्त्र से महालक्ष्मी देवी की आराधना करनी चाहिए ॥२१-२३॥

● अवतारत्रयार्चयां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजा चैवा पूज्या महिषमर्दिनी ॥२४॥
● महालक्ष्मीर्महाकालीसैव प्रोक्ता सरस्वती । ईश्वरी पुण्य-पापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥२५॥
● महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः । पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥२६॥
● अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्ध - पुष्पैस्तथाऽक्षतैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नाना-भक्ष्य - समन्वितैः ॥२७॥
● रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप । (बलि-मांसादि-पूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
● तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।) प्रणामा-ऽचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२८॥
● स-कपूरैश्च ताम्बूलैर्भक्ति-भाव-समन्वितैः । वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥२९॥

उनके तीन अवतारों के पूजन-काल में स्तोत्र में वर्णित मन्त्रों का ही प्रयोग करना चाहिए । अष्टादश भुजाओं वाली महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी ही विशेषतया आराध्य हैं, क्योंकि वे ही महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती भी कही जाती हैं । वे ही पुण्य-पापों की स्वामिनी तथा समस्त लोकों की स्वामिनी हैं ॥२४-२५॥ महिषासुरनाशिनी महालक्ष्मी का भक्ति-भाव से उपासना करने वाला ही संसार का यथार्थ स्वामी है । अतएव जगद्धात्री भक्तवत्सला भगवती चण्डिका की पूजा अवश्यमेव करनी चाहिए ॥२६॥ देवी के पूजन-सामग्री में अर्घ्य, आभूषण, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, अनेकों प्रकार के भक्ष्य द्रव्यों से युक्त नैवेद्य, रक्तसिंचित बलि, मांस, मदिरा आदि व्यवहृत होता है । (हे राजन् ! बलि और मांसादि से पूजन करने का विधान ब्राह्मणों के लिए नहीं है । ब्राह्मणों के लिए मांस-मदिरा का व्यवहार सर्वथा वर्ज्य है) । प्रणाम, आचमनीय-जल, सुगन्धित चन्दन, कपूर तथा ताम्बूल आदि निवेदित करके भक्तिपूर्वक देवी का पूजन करना चाहिए । देवी के सामने छिन्न मस्तक

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया । दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥३०॥
 वाहनं पूजयेद् देव्या धृतं येन चराऽचरम् । कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥३१॥
 ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः । एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥३२॥
 चरितार्थं तु न जपेज्जपञ्चिद्रमवाप्नुयात् । प्रदक्षिणा-नमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥३३॥
 क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः । प्रतिश्लोकं च जुहुयात् पायसं तिल-सर्पिषा ॥३४॥
 जुहुयात् स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः । भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत् सुसमाहितः ॥३५॥

वाले महिषासुर की पूजा करनी चाहिए, जिसने भगवती के साथ सायुज्य पद प्राप्त कर लिया । इसी प्रकार देवी के सामने दाहिनी ओर उनके वाहन सिंह की भी पूजा करनी चाहिए, जो समस्त धर्मों का प्रतीक स्वरूप एवं षड्विध विभूतियों से सम्पन्न है । उसी ने इस चराचर विश्व को धारण किया है । तत्पश्चात् बुद्धिमान् मनुष्य स्थिर मन से देवी का स्तवन करे ॥३०-३१॥ तदनन्तर तीनों पूर्वोक्त चरित्रों द्वारा करबद्ध होकर देवी की स्तुति करे । यदि कोई एक ही चरित्र के द्वारा स्तुति करना चाहे तो केवल मध्यम चरित्र का ही पाठ करना चाहिए ॥३२॥ किन्तु प्रथम और उत्तम चरित्रों में से एक का पाठ न करे । आधे चरित्र का पाठ करना भी निषिद्ध है । जो आधे चरित्र का पाठ करता है उसे पाठ करने का फल नहीं मिलता । पाठ समाप्ति के बाद आराधक देवी की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करें तथा प्रमाद त्यागकर जगद्धात्री के निमित्त मस्तक पर हाथ जोड़कर अपनी त्रुटियों के लिए उनसे बारम्बार क्षमा-याचना करें । सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मन्त्रस्वरूप है, उसी मन्त्र के द्वारा तिल और घृत से निर्मित खीर का हवन करें ॥३३-३४॥ अथवा सप्तशती में उल्लिखित मन्त्रों के द्वारा चण्डिका देवी

● प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि। सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥३६॥
● एवं यः पूजयेद् भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम्। भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥३७॥
● यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी ॥३८॥
● तस्मात् पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम्। यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥३९॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम्।

मूर्ति-रहस्यम्

ऋषिरुवाच

● ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा। स्तुता या पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥१॥

● के लिए पवित्र हविष्यान्न का हवन करना चाहिए। हवन के अनन्तर महालक्ष्मी के नाम-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए एकाग्र मन से पुनः उनकी पूजा करनी चाहिए ॥३५॥ तदनन्तर विनम्र भाव से हाथ जोड़कर मन और इन्द्रियों का निग्रह करते हुए देवी को नमस्कार करे और अपने अन्तर्मन में उनका ध्यान करके देर तक चिन्तन करे। चिन्तनकाल में इतनी तल्लीनता होनी चाहिए जिससे बाह्य-जगत् का ज्ञान न रह जाये ॥३६॥ इस प्रकार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक मनुष्य परमेश्वरी का पूजन करके ईप्सित भोगों को भोगता है और अन्त में देवी का सायुज्य (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है ॥३७॥ जो व्यक्ति प्रतिदिन भक्तवत्सला चण्डी देवी की पूजा नहीं करता, उसके समस्त पुण्य कर्मों को भगवती जलाकर भस्मसात् कर देती है ॥३८॥ इसलिए हे राजन्! तुम सर्वलोक महेश्वरी को शास्त्रोक्त विधि से पूजन करके सुख के भागी हो सकोगे ॥३९॥

इस प्रकार 'शिवदत्त' हिन्दी व्याख्या में वैकृतिक-रहस्य समाप्त।

● ऋषि ने कहा—हे राजन! नन्द से उत्पन्न होने वाली नन्दा नाम की देवी की यदि भक्तिभाव से

कनकोत्तमकान्तिः या सुकान्ति-कनकाम्बरा। देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥२॥
 कमलाङ्कुश-पाशाब्जैरलङ्कृत-चतुर्भुजा। इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्रीरुक्माम्बुजासना ॥३॥
 या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ। तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥४॥
 रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा। रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥५॥
 रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका। पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥६॥
 वसुधैव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी। दीर्घा लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥७॥

उपासना और पूजन किया जाये तो वे तीनों लोकों को आराधक के अधीनस्थ कर देती हैं ॥१॥ उनके अंगों की कान्ति स्वर्ण के समान उत्तम है। वे सुनहले रंग के सुन्दर वस्त्र पहनती हैं, उनकी आभा सुवर्ण के समान है तथा सुवर्ण के उत्तम आभूषण भी धारण करती हैं ॥२॥ उनकी चार भुजाओं में क्रमशः कमल, अंकुश, पाश और शंख शोभित हो रहे हैं। उनके नामों की संज्ञा इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (अर्थात् सुवर्णमय कमल के आसन पर आसीन) हैं। हे निष्पाप नरेश ! मैंने सर्वप्रथम जिन रक्तदन्तिका देवी के नाम से उल्लेख किया है, अब मैं उनके स्वरूप का वर्णन करूँगा, उसे श्रवण करो। वह सब प्रकार के भयों को नष्ट करने वाली हैं ॥३-४॥ उनके परिधान, शरीर का वर्ण और सम्पूर्ण आभरण भी लाल रंग के हैं। यहाँ तक कि उनके आयुध, नेत्र, केश, तीक्ष्ण नाखून और दन्तावली भी लाल ही है। इसी कारण वे रक्तदन्तिका कही जातीं और अत्यन्त भीषण दिखाई पड़ती हैं। जैसे, स्त्री अपने पति के प्रति अनुरक्त रहती हैं, वैसे ही देवी भी अपने भक्तों पर (स्नेहमयी जननी की तरह) अनुरक्त रहकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करती हैं ॥५-६॥ रक्तदन्तिका देवी का आकार वसुधरा के समान विस्तृत है। उनके स्तनद्वय सुमेरु पर्वत के सदृश हैं। वे लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले अत्यन्त

कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी। भक्तान् सम्पाययेद् देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥८॥
 खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा। आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥९॥
 अनया व्याप्तमखिलं जगत्-स्थावर-जङ्गमम्। इमां यः पूजयेद् भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥१०॥
 (भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवी सा युज्यमाप्नुयात्।) अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम्।
 तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥११॥
 शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना। गम्भीर-नाभिस्त्रिवली-विभूषित-तनूदरी ॥१२॥

पीन (मोटे) तथा बहुत ही मनोरम हैं। कठोरता होने पर भी उनमें कमनीयता है तथा वे आनन्द के पूर्ण सागर हैं, देवी अपने भक्तों को दोनों स्तनों का पान कराती हैं, क्योंकि उनके स्तन समस्त कामनाओं की सिद्धि कराने वाले हैं ॥७-८॥ उनकी चार भुजाओं में खड्ग, पानपात्र, मूसल और हल शोभा पाते हैं। वे ही रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं ॥९॥ उनके द्वारा यह चराचर जगत् परिव्याप्त है। जो इन रक्तदन्तिका देवी की भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह भी चराचर जगत् में व्याप्त हो जाता है ॥१०॥ (वह ईप्सित भोगों का उपभोग कर अन्त में देवी के साथ सायुज्य लाभ कर लेता है।) जिस प्रकार पतिपरायणा नारी अपने पति की प्रतिदिन सेवा करती है, ठीक उसी प्रकार रक्तदन्तिका देवी भी अपनी पूजा और स्तवन करने वाले भक्त का रक्षण के रूप में परिचर्या करती हैं ॥११॥ शाकम्भरी देवी के शरीर की आभा नील वर्ण की है। नील पद्म की भाँति उनके नेत्र हैं, नाभि भाग नीचा है तथा तीन रेखाओं से युक्त सूक्ष्म उदर है ॥१२॥

सुकर्कश-समोत्तुङ्ग-वृत्त-पान - धनस्तनो । मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥१३॥
 पुष्प-पल्लव-मूलादि-फलाढ्यं शाकसञ्चयम् । काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृणमृत्युभयापहम् ॥१४॥
 कार्मुकं च स्फुरत्कान्तिं बिभ्रती परमेश्वरी । शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥१५॥
 विशोका दुष्टदमनी शत्रुनी दुरितापदाम् । उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥१६॥
 शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायन् जपन् सम्पूज्यन् नमन् । अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥१७॥
 भीमाऽपि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा । विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥१८॥
 चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती । एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥१९॥

उनके दोनों कुच अत्यन्त कठोर, समतल, ऊँचे, गोल, पीन तथा परस्पर मिलित हैं । उनका निवास कमल में है । हाथों में बाणों से परिपूर्ण मुष्टि, कमल, शाकों का समूह तथा चमकीला धनुष है । वह शाकसमूह फूल, पर्ण, मूल एवं फलों से युक्त है और वह असीम मनोवांछा के रसों से पूर्ण तथा क्षुधा, पिपासा एवं मृत्युभय-नाशक है । उन्हीं का नाम शाकम्भरी, शताक्षी तथा दुर्गा है ॥१३-१५॥ वे शोकरहिस, दुष्टदमनी तथा पाप-ताप-शामक हैं । उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी उन्हीं के नाम हैं ॥१६॥ जो कोई शाकम्भरी देवी का स्तवन, ध्यान, जप, पूजन और वन्दन करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान तथा अमृतरूप अक्षयफल का अधिकारी बनता है ॥१७॥ भीमा देवी का भी नील वर्ण है । उनकी दाढ़ें और दाँत चमकीले हैं । उनके नेत्र विशाल, स्त्री का स्वरूप, स्तन गोलाकार और स्थूल है । उनके हाथों में चन्द्रहास नामक तलवार, डमरु, मस्तक और पानपात्र है । वे ही एकबीरा, कालरात्रि तथा कामदा के नामों से ख्यात होकर महिमान्वित होती हैं ॥१८-१९॥

तेजोमण्डलदुर्धर्वा, भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्। चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥२०॥
 चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते। इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥२१॥
 जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः। इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित् त्वया ॥२२॥
 व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥२३॥
 सप्तजन्मार्जितैर्धैरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि। पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२४॥
 देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥२५॥

भ्रामरी देवी के शरीर की आभा विपुल वर्णों से मिश्रित है। वे अपने तेजप्रभा के कारण दुर्धर्ष दीख पड़ती हैं। उनका अंगराग भी विविध रंगों का है तथा वे विचित्र आभरणों को धारण करती हैं ॥२०॥ चित्रभ्रमरपाणि और महामारी आदि नामों से उनका गुणगान किया जाता है। हे राजन्! इस प्रकार जगज्जननी चण्डिका देवी की मूर्तियों का वर्णन किया गया है ॥२१॥ उनका कीर्तन कामधेनु के समान सभी आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाला है। यह रहस्य बहुत ही गोपनीय है। इनका वर्णन किसी दूसरे से नहीं करना चाहिए ॥२२॥ दिव्य मूर्तियों का यह आख्यान मनोभिलषित फलदाता है, इसलिए प्रयत्नपूर्वक तुम सतत देव्याराधन में लगे रहो ॥२३॥ सप्तशती के मन्त्रों के केवल पाठ से ही मनुष्य को सात जन्मों के अर्जित ब्रह्महत्यादिक समस्त पापों से छुटकारा हो जाता है ॥२४॥ इसलिए मैं देवी के गुप्त से गुप्ततर ध्यान का कथन किया है, जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है ॥२५॥

॥ ३ ॥
॥ २५ ॥

(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि । सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि प

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम् ।

क्षमा-प्रार्थना

यद्वत्तेजोमयं देवि! मया विसर्ग-विन्दुक्षर- हीनमीरितम् । तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः सङ्कल्पसिद्धिश्च सदैव जायताम् ॥१॥
स यो ह्यद्विज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं तेस्तकेऽस्मिन् । तत्सर्वं साङ्गमास्तां भगवति वरदे! त्वत्प्रसादात्प्रसीद ॥२॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि! ॥३॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि! । यत्पूजितं मया देवि! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥४॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् । यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥५॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके । इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥६॥
कामेश्वरि! जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे । गृहाणाऽर्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि! ॥७॥

(उनके प्रसाद से तुम सर्वेसर्वा हो जाओगे । देवी का स्वरूप सर्वरूपयुक्त है तथा यह सम्पूर्ण विश्व
देवी से युक्त है । अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरी को प्रणाम करता हूँ ।)

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित मूर्ति-रहस्य समाप्त ।

क्षमा-प्रार्थना— तदनन्तर पाठकर्ता 'यदत्र पाठे जगदम्बिके०' से 'प्रसीद परमेश्वरि!' तक श्लोक पढ़
कर क्षमा-याचना करे।

श्रीदुर्गा-मानस-पूजा

उच्चचन्दन-कुङ्कुमारुण-पयोधाराभिराप्लावितां नानानर्घ्य-मणि-प्रवालघटितां दत्तां गृहाणाऽम्बिके ।
 दुर्गा-आमृष्टां सुर-सुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो मातः सुन्दरिभक्त-कल्प-लतिके श्रीपादुकामादरात् ॥१॥
 गो-देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं चञ्चत्-काञ्चन-सञ्चयाभिरर्चितं चारु-प्रभा-भास्वरम् ।
 सप्त-एतच्चम्पक-केतकी परिमलं तैलं महानिर्मलं गन्धोद्धर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाऽम्बिके ॥२॥
 सती-प्रश्नाद् देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो गन्ध-द्रव्य-समूह-निर्भरतरं धात्रीफलंनिर्मलम् ।
 तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनी-स्रोतसि स्नात्वा प्रोज्ज्वल-गन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरित्वन्मुदे ॥३॥
 सुराधिर्पात-कामिनी करसरोज-नालीधृतां सचन्दन-सकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
 महापरिमलोज्ज्वलां सरस-शुद्ध-कस्तूरिकां गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे ॥४॥
 गन्धर्वाऽपर-किन्नर-प्रियतमा-सन्तान-हस्ताम्बुज-प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतारं काश्मीरजा-पिञ्जरम् ।
 मातृर्भास्वर-भानुमण्डल-लसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम् ॥५॥
 स्वर्णाकल्पित-कुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
 हारो वक्षसि कङ्कणौ ववणरणत्कारौ करद्वन्द्वके विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥६॥
 श्रीकासां धृत-कान्ति-कान्त-पटलं त्रैवेयकं सुन्दरं सिन्दूरं विलसल्ललाट-फलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।
 राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदल श्रीमोचने लोचने तद्विष्यौषधि-निर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीपदे ॥७॥

- अमन्दतर-मन्दरोन्मथित-दुग्ध-सिन्धूद्धवं निशाकर-करोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे ।
 गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमैर्विनिर्मितमघच्छिदे रति-कराम्बुज-स्थायिनम् ॥८॥
 कस्तूरी-द्रव-चन्दनागुरुसुधा-धाराभिराप्लावितं चञ्चच्चम्पक-पाटलादिसुरभिर्द्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
 देवस्त्रीगण-मस्तक-स्थित-महारलादि-कुम्भव्रजै-रम्भः शाम्भवि सम्भ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥९॥
 कहारोत्पल-नाग-केसरसरोजाख्यावली-मालती-मल्ली-कैरव-केतकादि-कुसुमैरक्ताश्वमारादिभिः ।
 पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारस-स्रोतसा ताम्राम्भोज-निवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥१०॥
 मांसी-गुग्गुल चन्दनीऽगुरु-रजः-कर्पूर-शैलेयजै-मार्ध्वीकैः सहकुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भरामिश्रितैः ।
 सौरभ्य-स्थिति मन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये धूपोऽयं सुरकामिनी-विरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥११॥
 घृतद्रव-परिस्फुरद्गुचिर-रत्न-यष्ट्यान्वितो महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनी-निर्मितः ।
 सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वि-तस्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥१२॥
 जाती-सौरभ-निर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं युक्तं हिङ्गुमरीच-जीर-सुरभि-द्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ।
 पक्वान्नेन स-पायसेन मधुना दध्याज्य-सम्मिश्रितं नैवेद्यं सुरकामिनी-विरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥१३॥
 लवङ्ग-कलिकौज्ज्वलं बहुल-नागवल्लीदलं सजातिफलकोमलं सघनसार-पूगीफलम् ।
 सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥१४॥
 शरत्प्रभव-चन्द्रमः-स्फुरित-चन्द्रिकासुन्दरं गलत्सुरतरङ्गिणी-ललित-मौक्तिकाडम्बरम् ।
 गृहाण नवकाञ्चन-प्रभव-दण्ड-खण्डोज्ज्वलं महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥१५॥

मातस्त्वन्मुद्यातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।
 सद्योऽगस्त्य-वसिष्ठं-नारद-शुक-व्यासादि-वाल्मीकिभिः स्वेचितेक्रियमाण एवंकुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥१६॥
 दुर्गा स्वर्गाङ्गणे वेणु - मृदङ्ग - शङ्ख - भेरी - निनादैरुपगीयमाना ।
 कोलाहलैराकलिता तवाऽस्तु विद्याधरी - नृत्यकलासुखाय ॥१७॥
 देवि ! भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
 तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥१८॥
 एतैः षोडशभिः षट्पैरुपचारोपकल्पितैः । यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥१९॥

इति श्रीदुर्गा-मानस-पूजा समाप्ता ।

दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाम-माला

दुर्गा दुर्गीतिशमनी दुर्गापद् - विनिवारिणी । दुर्गमच्छेदिनी दुर्ग-साधिनी दुर्ग - नाशिनी ॥१॥
 दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा । दुर्गम-ज्ञानदा दुर्ग-दैत्यलोक - दवानला ॥२॥
 दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी । दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥३॥
 दुर्गम-ज्ञान-संस्थाना दुर्गम-ध्यान - भासिनी । दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥४॥
 दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी । दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमिश्चरी ॥५॥

दुर्गमीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी । नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥
पठेत् सर्वभयान् मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥६॥

इति दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाम-माला समाप्ता ।

देव्यपराध-क्षमापन-स्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ॥१॥
विधेरज्ञानेन द्रविण-विरहेणा-ऽलसतया विधेयाऽशक्यत्वात् तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिव कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥
जगन्मातर्मातस्त्व चरणसेवा न रचिता न वा दत्तं देवि ! द्रविणमपि भूयस्त्व मया ।
तथाऽपि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥
परित्यक्ता देवा विविध-विधि-सेवाकुलतया मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्त्व यदि कृपा नाऽपि भविता निरालम्बो लम्बोदर-जननि कं यामि शरणम् ॥५॥

● कृपाकोजल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा निरातङ्को रङ्गो विहरति चिरं कोटि-कनकैः ।
 ● तवापर्णे कर्णे विशन्ति मनुवर्णे फलमिदं जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥
 ● चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
 ● कपाली-भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणि-ग्रहण-परिपाटी-फलमिदम् ॥७॥
 ● नमोऽस्तु ॥ कांक्षा भव-विभव-वाञ्छाऽपि च न मे न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छाऽपि न पुनः ।
 ● अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥
 ● नाऽऽराधिताऽसि विधिना विविधोपचारैः किं रुक्ष-चिन्तन-परैर्न कृतं वचोभिः ।
 ● एषामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे धृत्ये कृपामुचितमम्ब ! परं तवैव ॥९॥
 ● आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
 ● नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधा-तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥
 ● जगदम्ब ! विचित्रमत्र किं परिपूर्णां करुणाऽस्ति चेन्मयि ।
 ● अपराध-परम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥
 ● मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
 ● एवं ज्ञात्वा महादेवि ! यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

इति देव्यपराध-क्षमापन-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

सिद्ध-कुञ्जिका-स्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् । येन मन्त्रप्रभावेन चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥१॥

न कवचं नाऽर्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् । न सूक्तं नाऽपि ध्यानं च न न्यासो न चवाऽर्चनम् ॥२॥

कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् । अति गुह्यतरं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ॥३॥

गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! । मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।

पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥४॥

भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से कहा— हे देवि ! मैं इस उत्तम कुञ्जिका-स्तोत्र का वर्णन करता हूँ । जिस कुञ्जिका मन्त्र के प्रभाव से ही चण्डी (दुर्गा) पाठ का पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥१॥ कवच, अर्गला, कीलक और तीनों रहस्य-देवीसूक्त, रात्रिसूक्त, प्रथम, मध्यम, उत्तम चरित्र के ध्यान, न्यास, पूजन आदि जो कि दुर्गासप्तशती पाठ के लिये अत्यावश्यक है, ये सभी केवल कुञ्जिका स्तोत्र के पाठ मात्र से ही दुर्गासप्तशती पाठ का फल प्राप्त होता है । हे देवि ! यह कुञ्जिका स्तोत्र अत्यन्त गोपनीय एवं देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥२-३॥ अतः हे पार्वती ! अपने गुप्तांग के समान इसे गुप्त ही रखना चाहिए । इस कुञ्जिकास्तोत्र के पाठ मात्र से ही मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन तथा उच्चाटन आदि सभी कार्य सिद्ध होते हैं ॥४॥

मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल

प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा । इति मन्त्रः ।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि । नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषामर्दिनि ॥१॥

नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥२॥

जाग्रतं हि महादेवि ! जपं सिद्धं कुरुष्व मे । ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥३॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तुते । चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥४॥

विच्चे चाऽभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणी ॥५॥

मन्त्र—‘ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे०’ से लेकर ‘हं सं लं क्षं फट् स्वाहा’ तक/कुञ्जिका मन्त्र है। शिवस्वरूपिणी, मधु-कैटभनाशिनी, महिषासुरघातिनी और शुम्भ-निशुम्भ नामक दैत्य को नष्ट करने वाली आपको नमस्कार है॥१-२॥ हे महादेवि आप मेरे जप को सिद्ध करें। आप ऐं रूप से जगत् की उत्पत्ति, ह्रीं रूप से पालन, क्लीं रूप से संहार करने वाली, चामुण्डा रूप से चण्ड-मुण्ड नामक दैत्य का वध करने वाली, यै स्वरूप से भक्तों को अभीष्ट वर देने वाली तथा विच्चे रूप से अभय प्रदान करने वाली, नवार्ण मन्त्र स्वरूप वाली हे जगदम्बा! आपको नमस्कार है॥३-५॥

धां धीं धूं स्वरूप धूर्जटी (शंकर) की पत्नी, वां वीं वूं स्वरूप वाग् (वाणी) की अधीश्वरी सरस्वती

सिद्ध-कुञ्जिका-स्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् । येन मन्त्रप्रभावेन चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥१॥

न कवचं नाऽर्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् । न सूक्तं नाऽपि ध्यानं च न न्यासो न चवाऽर्चनम् ॥२॥

कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् । अति गुह्यतरं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ॥३॥

गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! । मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।

पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥४॥

भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से कहा— हे देवि ! मैं इस उत्तम कुञ्जिका-स्तोत्र का वर्णन करता हूँ । जिस कुञ्जिका मन्त्र के प्रभाव से ही चण्डी (दुर्गा) पाठ का पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥१॥ कवच, अर्गला, कीलक और तीनों रहस्य-देवीसूक्त, रात्रिसूक्त, प्रथम, मध्यम, उत्तम चरित्र के ध्यान, न्यास, पूजन आदि जो कि दुर्गासप्तशती पाठ के लिये अत्यावश्यक है, ये सभी केवल कुञ्जिका स्तोत्र के पाठ मात्र से ही दुर्गासप्तशती पाठ का फल प्राप्त होता है । हे देवि ! यह कुञ्जिका स्तोत्र अत्यन्त गोपनीय एवं देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥२-३॥ अतः हे पार्वती ! अपने गुप्तांग के समान इसे गुप्त ही रखना चाहिए । इस कुञ्जिकास्तोत्र के पाठ मात्र से ही मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन तथा उच्चाटन आदि सभी कार्य सिद्ध होते हैं ॥४॥

मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल

प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा । इति मन्त्रः ।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि । नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषामर्दिनि ॥१॥

नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥२॥

जाग्रतं हि महादेवि ! जपं सिद्धं कुरुष्व मे । ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥३॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते । चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥४॥

विच्चे चाऽभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणी ॥५॥

मन्त्र—‘ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे०’ से लेकर ‘हं सं लं क्षं फट् स्वाहा’ तक कुञ्जिका मन्त्र है।

शिवस्वरूपिणी, मधु-कैटभनाशिनी, महिषासुरघातिनी और शुम्भ-निशुम्भ नामक दैत्य को नष्ट करने वाली आपको नमस्कार है॥१-२॥ हे महादेवि आप मेरे जप को सिद्ध करें। आप ऐं रूप से जगत् की उत्पत्ति, ह्रीं रूप से पालन, क्लीं रूप से संहार करने वाली, चामुण्डा रूप से चण्ड-मुण्ड नामक दैत्य का वध करने वाली, यै स्वरूप से भक्तों को अभीष्ट वर देने वाली तथा विच्चे रूप से अभय प्रदान करने वाली, नवार्ण मन्त्र स्वरूप वाली हे जगदम्बा! आपको नमस्कार है॥३-५॥

धां धीं धूं स्वरूप धूर्जटी (शंकर) की पत्नी, वां वीं वूं स्वरूप वाग् (वाणी) की अधीश्वरी सरस्वती

॥ वां वीं वूं धृजटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी । क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि ! शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥६॥
 ॥ हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी । भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥७॥
 ॥ अं कं चं टं तं पं वं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं । धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥
 ॥ पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा । सां सीं सूं सप्तशती देवया मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥८॥
 ॥ इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागतिहितवे । अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पावति ! ॥९॥
 ॥ यस्तु कुञ्जिकया देवि ! हीनां सप्तशतीं पठेत् । न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥१०॥

इति रुद्रयामलस्थ-गौरीतन्त्रे शिव-पार्वती-संवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

॥ क्रां क्रीं क्रूं रूपिणी कालिका, शां शीं शूं स्वरूपिणी शान्ति देवी मेरा कल्याण करें ॥६॥ हुं हुं स्वरूप
 ॥ वाली हुंकाररूपिणी देवी, जं जं जं रूपिणी जम्भनादिनी देवी तथा भ्रां भ्रीं भ्रूं स्वरूप वाली भैरवी, भद्रा
 ॥ तथा भवानी आपको बारम्बार नमस्कार है ॥७॥ 'अं कं चं टं तं' से 'कुरु कुरु स्वाहा' तक पाठ करो।
 ॥ पां पीं पूं स्वरूपिणी पार्वती, पूर्णा, खां खीं खूं रूपिणी खेचरी तथा सां सीं सूं स्वरूप वाली
 ॥ दुर्गासप्तशती के समस्त मन्त्रों की सिद्धि हे देवि ! मुझे प्राप्त हो ॥८॥

॥ फलश्रुति— इस कुञ्जिकास्तोत्र के पाठ मात्र से ही दुर्गासप्तशती के समस्त मन्त्र सिद्ध होते हैं हे
 ॥ पार्वति ! इस गुप्त स्तोत्र का रहस्य नास्तिक अर्थात् शास्त्र में अश्रद्धालु जनों के लिये नहीं बताना
 ॥ चाहिए ॥९॥ हे देवि ! जो इस कुञ्जिकास्तोत्र के पाठ बिना दुर्गासप्तशती का पाठ करता है, उसे अरण्य
 ॥ (जंगल) में रोदन के समान सिद्धि प्राप्त नहीं होती अर्थात् उसका सप्तशती पाठ व्यर्थ होता है ॥१०॥

इस प्रकार श्रीरुद्रयामल के गौरी तन्त्र में शिव-पार्वती-संवाद में सिद्धकुञ्जिका स्तोत्र सम्पूर्ण ।

दुर्गासप्तशती के कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

१. सामूहिक कल्याणार्थः :
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निशेष-देवगण-शक्ति समूह-मूर्त्या ।
तामखिकामखिल-देव-महर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥
२. विश्व के अमांगलिक फल तथा भयनाशकः :
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिका-ऽखिल-जगत्-परिपालनाय नाशाय चाशुभ-भयस्य मतिं करोतु ॥
३. विश्व रक्षणार्थः :
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
ब्रन्दा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥
४. विश्व-सम्बन्धी अभ्युत्थानः :
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाग्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥
५. विश्वव्यापी विपत्ति-नाशकः :
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराऽचरस्य ॥
६. विश्व-ताप से त्राण पाने के लिए :
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रथमं नयाशु उत्पात-पाक-जनितांश्च महोपसर्गान् ॥

सम्पुट

मन्त्र

७. आपत्ति-उद्धारक :

शरणागत-दीनार्त-परित्राण-परायणे सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

८. विपत्तिनाशक तथा शुभदायकः :

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥

९. भयनिवारक :

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥

१०. पापनाशक :

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।

सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥

११. रोगनाशक :

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥

१२. महामारी नाशक :

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

१३. सौभाग्य और आरोग्यकारक :

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

१४. सुलक्षणा पत्नी की प्राप्ति के लिये :

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसार-सागरस्य कुलोद्भवाम् ॥

१५. सर्वांगीण अभ्युत्थान :

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मज-भृत्य-दारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥

१६. सर्वाबाधा प्रशमनार्थ :

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याऽखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥

१७. दुःख-दारिद्र्य निवारणार्थ :

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्य-दुःखः-भयहारिणी का त्वदन्या सर्वोपकार-करणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥

१८. स्वरक्षणार्थ :

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाऽम्बिके ।
घण्टा स्वनेन नःपाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥

१९. सम्पूर्ण विद्याओं की प्राप्ति तथा समस्त स्त्रियों में मातृभावनात्मक की प्राप्ति के लिये:

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाःस्त्रियःसमस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिःस्तव्य परा परोक्तिः ॥

२०. सर्वकल्याणार्थ :

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

२१. शक्ति-प्राप्ति के लिए :

सृष्टि - स्थिति - विनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाग्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

२२. प्रसन्नता की उपलब्धि के लिए :

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणी ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥

२३. विविध उपद्रवों के शमनार्थ :

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्यु बलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाऽब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिषासि विश्वम् ॥

२४. धन-पुत्रादि का वृद्धिकारक तथा बाधानाशक :

सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो धन-धान्य-सुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥

२५. मोक्षलाभ के लिए :

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

२६. पापनाश एवं भक्ति-प्राप्ति के निमित्त :

न तेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

२७. स्वर्ग तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए :

२७. स्वर्ग तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए :

सर्वभूता यदा देवि स्वर्ग-मुक्ति-प्रदायिनी ।

त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥

२८. स्वराज्य-प्राप्ति :

ततो वब्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥

२९. इच्छित फल-प्राप्ति :

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥

३०. स्वप्न का शुभाऽशुभ फल :

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थ-साधिके । मम सिद्धिमसिद्धि वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ॥

इस प्रकार दुर्गासप्तशती के सम्पुट-मंत्र विधान समाप्त ।

श्रीदुर्गा-चालीसा

नमो नमो दुर्गे सुख करनी । नमो नमो अम्बे दुख हरनी ॥

निरंकार है ज्योति तुम्हारी । तिहूँ लोक फैली उजियारी ॥

शशि ललाट मुख महा विशाला । नेत्र लाल भृकुटी विकराला ॥

रूप मातु को अधिक सुहावै । दरश करत जनि अति सुख पावै ॥

तुम संसार शक्ति लय कीना । पालन हेतु अन्न धन दीना ॥

अन्नपूर्णा हुई जग पाला । तुमहीं आदि सुन्दरी बाला ॥

श्री दुर्गा चालीसा

प्रलयकाल सब नाशन हारी। तुम गौरी शिवशंकर प्यारी ॥
 शिव योगी तुम्हरे गुण गावैं। ब्रह्मा विष्णु तुम्हें नित ध्यावैं ॥
 रूप सरस्वती को तुम धारा। दे सुबुद्धि ऋषि-मुनिन उबारा ॥
 धरा रूप नरसिंह को अम्बा। परगट भई फाड़ कर खम्भा ॥
 रक्षा करि प्रह्लाद बचायो। हिरणाकुश को स्वर्ग पठायो ॥
 लक्ष्मी रूप धरी जगमाहीं। श्री नारायण अंग समाहीं ॥
 क्षीरसिन्धु में करत विलासा। दयासिन्धु दीजै मन आशा ॥
 हिंगलाज में तुम्हीं भवानी। महिमा अमित न जात बखानी ॥
 मातंगी धूमावति माता। भुवनेश्वरि चगला सुखदाता ॥
 श्री भैरवि तारा जग तारिणि। छिन्न भाल भव-दुख निवारिणि ॥
 केहरि वाहन सोह भवानी। लंगूर वीर चलत अगवानी ॥
 कर में खप्पर खड्ग विराजै। जाको देखि काल डर भाजै ॥
 सोहै अस्त्र और तिरशूला। जाते उठत शत्रु हिय शूला ॥
 नगरकोट में तुम्हीं बिराजत। तिहूँ लोक में डंका बाजत ॥
 शुम्भ-निशुम्भ दानव तुम मारे। रक्तबीज शंखन संहारे ॥
 महिषासुर नृप अति अभिमानी। जेहिअघ भार मही अकुलानी ॥

रूप कराल काली को धारा। सेन सहित तुम तिहिं संहारा ॥
 परी गाढ़ सन्तन पर जब - जब। भई सहाय मात तम तब-तब ॥

रूप कराल काली को धारा । सेन सहित तुम तिहिं संहारा ॥
 परी गाढ़ सन्तन पर जब - जब । भई सहाय मातु तुम तब-तब ॥
 अमरपुरी औरों सब लोका । तव महिमा सब रहे अशोका ॥ श्री
 ज्वाला में है ज्योति तुम्हारी । तुम्हें सदा पूजें नर-नारी ॥ दु
 प्रेम-भक्ति से जो जश गावैं । दुख-दारिद्र निकट नहिं आवैं ॥ गा
 ध्यावै तुम्हें जो नर मन लाई । जन्म-मरण ताको छुटि जाई ॥ चा
 जोगी सुर-मुनि कहत पुकारी । योग न हो बिन शक्ति तुम्हारी ॥ ली
 शंकर ने आचरज तप कीनो । काम क्रोध जीति सब लीनो ॥ सा
 निशिदिन ध्यान धरो शंकर को । काहु काल नहिं सुमिरो तुमको ॥
 शक्ति रूप को मरम न पायो । शक्ति गई तब मन पछितायो ॥
 शरणागत होइ कीर्ति बखानी । जय-जय-जय जगदम्ब भवानी ॥
 भई प्रसन्न आदि जगदम्बा । दई शक्ति नहिं कीन विलम्बा ॥
 मोको मातु कष्ट अति घेरो । तुम बिन कौन हरे दुख मेरो ॥
 आशा तृष्णा निपट सतावै । मोह मदादिक सब बिनशावै ॥
 शत्रु नाश कीजै महसानी । सुमिरौं इक चित तुम्हें भवानी ॥
 करो कृपा हे मातु दयाला । ऋद्धि-सिद्धि दे करहु निहाला ॥

जब लगि जियों दया-फल पाऊँ । तुम्हरी जस मैं सदा सुनाऊँ ॥
 दुर्गा-चालीसा जो कोई गावै । सब सुख भोग परमपद पावै ॥
 देवीदास शरण निज जानी । करहु कृपा जगदम्ब भवानी ॥

इति दुर्गा-चालीसा समाप्त ।

श्रीदेवीजी की आरती

जगजननी जय ! जय !! (मा ! जगजननी जय ! जय !!)
 भयहारिणि, भवतारिणि भवभामिनि जय ! जय !! जग०
 तू ही सत्-चित् सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा ।
 सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा ॥ १ ॥ जग०
 आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी ।
 अमल अनन्त अगोचर अज आनन्दराशी ॥ २ ॥ जग०
 अविकारी अघहारी, अकल कलाधारी ।
 कर्ता विधि, भर्ता हरि हर संहारकारी ॥ ३ ॥ जग०
 तू विधिवधू, रमा तू, तू उमा, महामाया ।
 मूलप्रकृति विद्या तू, तू जननी, जाया ॥ ४ ॥ जग०

मूलप्रकृति विद्या तु जननी, जाया ॥४॥जग०

राम, कृष्ण तु, सीता, ब्रजरानी राधा ।
 तु वांछा-कल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा ॥५॥जग०
 दश विद्या, नवदुर्गा, नाना शस्त्रधरा ।
 अष्टमातृका, योगिनि, नव-नव रूप धरा ॥६॥जग०
 तु परमधाम - निवासिनि, महाविलासिनि तु ।
 तु ही श्मशान-विहारिणि, ताण्डव-लासिनि तु ॥७॥जग०
 तु सुर - मुनि - मोहिनि सौम्या तु शोभाऽऽधारा ।
 विवसन विकट-स्वरूपा, प्रलयमयी धारा ॥८॥जग०
 तु ही स्नेहसुधामयि, तु अति गरलमना ।
 रत्नविभूषित तु ही, तु ही अस्थि - तना ॥९॥जग०
 मूलाधार - निवासिनि, इह - पर - सिद्धिप्रदे ।
 कालातीता काली, कमला तु वरदे ॥१०॥जग०
 शक्ति शक्तिधर तु ही, नित्य अभेदमयी ।
 भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले ! वेदत्रयी ॥११॥जग०
 हम अति दीनदुखी माँ ! विपत-जाल घेरे ।
 हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे ॥१२॥जग०

देवी जी आरती

निज स्वभाववश जननी ! दयादृष्टि कीजै ।
 करुणा कर करुणामयि ! चरण-शरण दीजै ॥ १३ ॥ जग०
 श्रीअम्बाजी की आरती
 गीर्गा जय अम्बे गौरी, मैया जय श्यामा गौरी ।
 सप्त मैया जय मंगलकरणी, मैया जय आनन्दकरणी ॥
 स तुमको निशिदिन ध्यावत, हरि ब्रह्मा शिवरी ॥ १ ॥ जय अम्बे ।
 ती माँग सिन्दूर विराजत, टीकौ मृगमद को ।
 उज्ज्वल से दोऊ नैना, चन्द्रवदन नीको ॥ २ ॥ जय अम्बे ।
 कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै ।
 रक्त पुष्प गल माला, कण्ठन पर साजै ॥ ३ ॥ जय अम्बे ।
 केहरि वाहन राजत, खड्ग खप्पर धारी ।
 सुर नर मुनि जन सेवत, तिनके दुःख हारी ॥ ४ ॥ जय अम्बे ।
 कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती ।
 कोटिक चन्द्र दिवाकर, राजत सम ज्योती ॥ ५ ॥ जय अम्बे ।
 शुम्भ-निशुम्भ बिदारे, महिषासुर घाती ।
 धूम्र विलोचन नैना, निशिदिन मदमाती ॥ ६ ॥ जय अम्बे ।

अम्बाजी आरती

चण्ड-मुण्ड संहारे शोणित बीज हरे ।
 मधु-कैटभ दोऊ मारे, सुर भयहीन करे ॥७॥ जय अम्बे ।
 ब्रह्माणी रुद्राणी, तुम कमला रानी ।
 आगम निगम बखानी, तुम शिव पटरानी ॥८॥ जय अम्बे ।
 चौंसठ योगिनी गावत, नृत्य करत भैरो ।
 बाजत ताल मृदंगा, और बाजे डमरू ॥९॥ जय अम्बे ।
 तुम ही जग की माता, तुम ही हो भरता ।
 भक्तन की दुःख हरता, सुख सम्पति करता ॥१०॥ जय अम्बे ।
 भुजा चार अति शोभित, वरहु अभयधारी ।
 मनवांछित फल पावत, सेवत नर-नारी ॥११॥ जय अम्बे ।
 कंचन थाल विराजत, अगर कपूर बाती ।
 श्रीमालकेतु में राजत, कोटि रत्न ज्योती ॥१२॥ जय अम्बे ।
 ये अम्बे जी की आरति, जो कोई नर गावैं ।
 कहत शिवानन्द स्वामी, सुख-सम्पति पावैं ॥१३॥ जय अम्बे ।

इति देवरिया-मण्डलान्तर्गत-‘मझौली राज्य’ (सम्प्रति वाराणसी) वास्तव्येन पण्डित-श्रीसन्तशरणमिश्रसूनुना आचार्य-
 पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत-हिन्दी टीका-सहित-पाठोपयोगि विविध-विषयैर्विभूषिता दुर्गा-सप्तशती समाप्ता ।

विन्ध्येश्वरी - स्तोत्रम्

निशुम्भ - शुम्भ - मर्दिनी, प्रचण्ड - मुण्ड - खण्डिनीम् ।
 वने रणे प्रकाशिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ १ ॥
 त्रिशूल - मुण्ड - धारिणीं, धरा - विधात - हारिणीम् ।
 गृहे - गृहे निवासिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ २ ॥
 दरिद्र - दुःख - हारिणीं, सती - विभूति - धारिणीम् ।
 वियोग - शोक - हारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ३ ॥
 लसत्सुलोल - लोचनीं, जने सदा वरप्रदाम् ।
 कपाल - शूल - धारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ४ ॥
 कराब्ज - दानदा - धरां, शिवा - शिव - प्रदायिनीम् ।
 वरां वराननां शुभां, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ५ ॥
 कपीन्द्र - जामिनीप्रदां, त्रिधा - स्वरूप - धारिणीम् ।
 जले - स्थले - निवासिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ६ ॥
 विशिष्ट - शिष्ट - कारिणीम्, विशाल - रूप - धारिणीम् ।
 महोदरे विलासिनीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ७ ॥
 पुरन्दरादि - सेवितां, पुरादिवंश - खण्डिताम् ।
 विशुद्ध - बुद्धिकारिणीं, भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ८ ॥

इति विन्ध्येश्वरी-स्तोत्रं समाप्तम्।

पूजन-हवन-सामग्री

दुर्गा
गाँ
स
प्त
स
ती

रोली, मौली
धूपबत्ती १ पैकेट
केशर, कपूर, रूई
अबीर (गुलाल)
बुक्का (अभ्रक)
सिन्दूर
चावल
पान, सुपारी
पेड़ा, बतासा
ऋतुफल
गोबर, गोमूत्र
दुग्ध, दधि
घृत १। पाव
चीनी 5।
शहद, यज्ञोपवीत
अतर १ शीशी
जल १ शीशी
मिश्री

पुष्प छुड़ा, माला
तुलसी, दूर्वा
बिल्वपत्र
कुशा, गंगाजल
इलायची छोटी
लवंग, जायफल
नारियल, गिरिगोला
पञ्चपल्लव
पञ्चरत्न की पुड़िया
सर्वोषधि
सप्त मृत्तिका
मेंहदी पीसी
हल्दी पीसी
सुरुवारी का बीया
काली मिर्च, गुरुच
पीली सरसों
लाल चन्दन
अनार, खोआ

तेल सुगन्धित
काली उड़द, पापड़
काठ की चौकी
काठ का पाटा
लोहे की कँटिया
केले के खम्भे
कम्बल, सूत की डोरी
नवग्रह की लकड़ी
रेशमी साड़ी (दुर्गा के
लिये)
चुनरी, धोती, अंगोछा
सफेद कपड़ा
लाल कपड़ा
बन्दनवार
सौभाग्य पिटारी
शीशा, कंधी
दुर्गा की फोटो
दुर्गा की मूर्ति सुवर्ण की

चाँदी का चौक
(१६ अंगुल लम्बा)
वरण सामग्री
धोती, दुपड़ा
अंगोछा, लोटा
गिलास, पंचपात्र
आचमनी, गोममुखी
माला
यज्ञोपवीत, खड़ाऊँ
दुर्गा की पुस्तक
आसन
हवन सामग्री
तिल
यव, चोना, घृत
पंचमेवा, कमलगट्टा
गुग्गुल, भोजपत्र
चन्दन का चूस
आम की लकड़ी

विष्णुशरी - स्तोत्रम

निशुम्भ

वने

यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें एक बार मँगाकर अवश्य पढ़ें

पुस्तकें

भा०टी०	१५)	वाच-भट्टरी की कहावतें भा०टी०	२५)	दत्तात्रेय तन्त्र-भाषा टीका	२५)
ग्लेज	२००)	विष्णुकर्मा प्रकाश भाषा टीका	७५)	उद्देश तन्त्र भाषा टीका	२०)
दर्पण भा०टी०	२०)	स्त्री जातक भाषा टीका	३०)	रसराममहादधि पौर्णिमा भाषा	२५)
ध्वज भा०टी०	२५०)	श्रीप्रबोध भाषा टीका	२०)	मानसागरी भा०टी०	२५)
मध्यम मूल दोहा चौपाई	७५)	शिव स्वरोदय भाषा टीका	२०)	विवाह पद्धति भा०टी०	२५)
वाल्मीकीय रामायण भाषा	२५०)	प्रभुविद्या प्रतिष्ठानम्		उपनयन पद्धति भाषा	२५)
अध्यात्म रामायण भा०टी०	२००)	(सर्वदेव प्रतिष्ठा मयूख)	२५०)	वासुदेवी हवन पद्धति भा०टी०	२५)
आनन्द रामायण भाषा	२००)	कुण्ड निर्माण स्वाहाकार पद्धति	६०)	गणपति प्रतिष्ठा पद्धति भा०टी०	२५)
राधेश्याम रामायण	८०)	विष्णुयाग पद्धति भाषा टीका	२००)	धर्मशास्त्र प्रवृत्ति भाषा टीका	२०)
भृगुसंहिता भाषा	१५०)	दुर्गासप्तशती भा०टी०		संकटी गणेश चतुर्थी प्राद	
प्रेमसागर	७५)	सजिन्द (भोटे अहिरों में)	६०)	कथा भा०टी०	
श्रीमद्भागवत महापुराण		दुर्गा सप्तशती भा०टी०	२५)	एकादशी महात्म्य भाषा	२५)
भा०टी० साँची	५००)	दुर्गा सप्तशती भाषा ग्लेज	२०)	कार्तिक महात्म्य भाषा	२५)
श्रीमद्देवीभागवत भा०टी० साँची	६००)	दुर्गा सप्तशती ३२ पेजी मूल	२५)	कार्तिक महात्म्य भाषा टीका	६०)
नृसिंहात्मसार भाषा टीका	७५)	दुर्गा सप्तशती ६४ पेजी मूल	२०)	हनुमन्-रहस्य भाषा टीका	२५)
ताजिक नीलकण्ठी भाषा टीका	७५)	दुर्गाकवचम् भा०टी०	८)	गायत्री-रहस्य भाषा टीका	२५)
कर्मविषाक संहिता भाषा टीका	७५)	दुर्गाकवच ३२ पेजी मूल	५)	नृसिंह-स्तोत्र रत्नकर वङ्ग	१००)
चमत्कार चिन्तामणि भाषा टीका	८)	दुर्गा रामायण	१५)	रघुवंश महाकाव्य प्रथम सर्ग	१५)
भावकुतूहल भाषा टीका	७५)	मन्त्र-सागर भाषा-टीका	७५)	हितोपदेश मित्रलाभ भाषा टीका	२०)
मुहूर्तचिन्तामणि भाषा टीका	६०)	बगलोपासनपद्धति-बगलामुखी-		किताबुनायम् १-२ सर्ग भा०टी०	१५)
लग्नचन्द्रिका भाषा टीका	४००)	रहस्य भाषा टीका	४०)	सोरठी कृष्णार्णव १६ भाग	१५)

पुस्तक प्राप्ति-स्थान :

श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

पुस्तक प्राप्ति-स्थान : श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

